अण्डमन द्वीपों में छोटे बड़े मिलाकर कोई २०० द्वीप हैं। उनके अन्तर्गत कितनेही ऐसे द्वीप हैं जिनमें एक भी मनुष्य नहीं बसता। भूतत्व-वेत्ताओं का ऐसा अनुमान है कि पहले यह द्वीप एशिया महादेश का एक संयुक्त भाग था। मध्यवर्ती भूखण्ड समुद्र के गर्भ में निमग्न हो गया। पृथिवी का बचा हुआ भाग समुद्र-वेष्टित हो जाने के कारण द्वीपाकार हो गया है। इस द्वीप का अधिकांश अब भी समुद्र के गर्भ में पतित होता जाता है। इसका यथेष्ट प्रमाण भी है।

अण्डमन द्वीप में सर्दी गर्मी दोनों एकसी रहती है। एक वर्ष में कोई २०० इञ्च के ऊपर वर्षा होती है। साल में छः मास वृष्टि होती है। इन्हीं कारणों से यहां का जल वायु स्वास्थ्यकर नहीं है। इसीसे यहां पेचिश, मलेरिया ज्वर, तथा खांसी आदि अनेक प्रकार की बीमारियां अधिकतर होती हैं। सारा द्वीप, समुद्र के किनारे तक, घने जङ्गलों से घिरा है। जगह जगह बेतों का जङ्गल इतना घना है, कि उसमें जङ्गली अण्डमनी भी नहीं जा सकते। कहीं कहीं इसका प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही मनोरम है। परन्तु खेद है कि यहां के असभ्य अण्डमनी लोग इसकी सौन्दर्य्य-छटा को समझने और उपभोग करने में सर्व्वथा असमर्थ हैं। यहां बड़े बड़े जङ्गली जन्तुओं का नाम निशान तक नहीं है। यहां के आदिम निवासी कई प्रकार के कन्दमूल, मछली, कीड़े मकोड़े खाकर अपने जीवन को धारण करते हैं।

अण्डमनी लोग 'नेग्रिटो' जाति के मनुष्य हैं। भारतवर्ष के सैंताल, कोल, भील आदि जातियों के साथ 'नेग्रिटो' रक्त का सम्बन्ध है। पश्चिमी तत्ववेत्तागण का यह अनुमान है कि १८५८ ई० में, बृटिश गवर्नमेण्ट ने जब अण्डमन द्वीप पर अपना दख़ल किया, उस समय बड़े बड़े टापुओं में अनुमान ६,००० मनुष्य और छोटों में २,००० मनुष्य थे। ऊपर इस बातका उल्लेख हो चुका है कि, प्राचीन काल में यह द्वीप एशिया खण्ड का एक संयुक्त भाग था। अण्डमन-वासी ऐसा कहा करते हैं, कि एक बार प्रलय होने से इस देश का एक बहुत बड़ा हिस्सा समुद्र में जलमग्न हो गया।

अण्डमन नाम की उत्पत्ति के विषय में 'पोर्ट-म्यान' साहब का यह कथन है—"मलेय द्वीप-निवासी बहुत प्राचीन काल से अण्डमन द्वीप में जाकर वहां के अधिवासियों को पकड़ लाते थे; और फिर उन्हें दास (ग़ुलाम) की भाँति बेचते थे"। मलयदेश-वासियों का विश्वास था, कि ये 'हण्डुमान' लोग रामायण में वर्णित बन्दर वा हनूमान जी के वंशधर हैं। मलयवासी हनूमान शब्द का उच्चारण "हण्डु-मान" करते हैं। इसी "हण्डुमान" शब्द का अपभ्रंश अण्डमन हुआ है।

अण्डमनी लोग १२ गोत्र और ३ श्रेणियों में बटे हुए हैं। प्रत्येक गोत्र से बहुतसी छोटी छोटी शाखायें निकली हैं। हर एक गोत्र के मनुष्य एक ही तरह का तीर और धनुष व्यवहार करते हैं; एक ही तरह के गहने पहिनते हैं; एक ही तरह का गोदना गोदाते हैं; और प्रायः एक ही भाषा में बातचीत करते हैं। इनमें और भी दो श्रेणियां हैं; एक का नाम "आर-याऊटो" अर्थात् समुद्र-तीर-वासी और दूसरी का नाम "एरे मटाग" अर्थात् अरण्यवासी है। ये लोग जङ्गल का भीतरी रास्ता ख़ूब पहिचानते हैं, और सुअर का शिकार करने में बड़े ही दक्ष होते हैं। ये लोग, अण्डमन के जीव जन्तुओं और जड़ी बूटियों के सम्बन्ध में, समुद्र तीरवासियों से बढ़कर ज्ञान रखते हैं। ये लोग समुद्र-तीर-वासियों की अपेक्षा कुछ डरपोंक और धूर्त्त भी होते हैं। जङ्गल-वासी कछुआ आदि को तीर से नहीं मार सकते। जङ्गल-वासी और समुद्रवासियों के बीच परस्पर लड़के लड़कियों का विवाह-सम्बन्ध होता है। वे अपने घरवालों तथा कुटुम्बियों के साथ ख़ूब प्रीति रखते हैं; और जान पहचान होने से अन्य लोगों के साथ भी अच्छे बर्ताव से मिलते हैं। अपने अपरिचित, तथा अन्य गोत्रवालों को, और सम्पूर्ण विदेशियों को, ये लोग

अपना शत्रु जानते हैं। दत्तक पुत्र अर्थात् गोद लेने से जङ्गल-वासी समुद्र-तीरवासी हो सकता है। परन्तु समुद्रवासी, कभी जङ्गलवासी नहीं हो सकता। कारण यह है, कि समुद्र-तीर-वासी, जङ्गल-वासियों के प्रति घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

अण्डमनी पुरुषों की लम्बाई ४ फुट १०½ इञ्च और स्त्रियों की ४ फुट ६ इञ्च होती है। पुरुषों के स्वाभाविक शरीर की गरमी ९९ डिग्री और स्त्रियों की ९९·५ डिग्री होती है। पुरुषों की नाड़ी १ मिनट में ८२ बार और स्त्रियों की ९३ बार चलती है। पुरुष एक मिनट में १९ बार सांस लेते हैं और स्त्रियां १६ बार। पुरुषों का शारीरिक वज़न कोई ४८ सेर और स्त्रियों का कोई ४४ सेर होता है। इससे विदित होता है कि, इन लोगों की शारीरिक गरमी आर्य्य जाति के मनुष्यों की अपेक्षा कुछ अधिक है। इसका ठीक कारण विदित नहीं है। शायद गरम चीज़ों को अधिक खाने अथवा मलेरियापूर्ण देश में रहने से इन लोगों के शरीर में ज्वरांश या गरमी रहती है।

इन लोगों को सरदी बिलकुल पसन्द नहीं है; और सरदी से ये लोग डरते भी हैं। यदि वे भारतवर्ष ऐसे देश में रक्खे जायँ (जो कि अण्डमन से अधिक ठण्ढा है) तो ऐसा स्थान उन लोगों के स्वास्थ्य के लिये कुछ हानिकारक न होगा; किन्तु अधिक स्वास्थ्यकर अवश्य होगा। इन लोगों को गरमी सहने की खूब आदत है। परन्तु कभी कभी इनके सिर में दर्द हो जाता है। ये लोग गरमी के दिनों में भी, प्रचण्ड धूप में, नग्न शरीर दिगम्बर जलस्थल दोनों में घूमा फिरा करते हैं। ये खब कड़कड़ाती हुई धूप में नाव पर चढ़े जल-विहार किया करते हैं। कभी कभी ये एक प्रकार के पत्तों का छाता भी लगाते हैं। ये लोग भूख प्यास बिलकुल नहीं सह सकते। उपाय रहने से शीघ्र ही ये उसकी निवृत्ति कर डालते हैं। ये लोग २४ घण्टे से अधिक नहीं जाग सकते; परन्तु किसी किसी नृत्योत्सव में चार दिन चार रात तक, बराबर, जागते रहते हैं। परन्तु इसके पश्चात् ये बहुतही क्लान्त हो जाते हैं।

इनका कण्ठ-स्वर गम्भीर और कर्कश होने पर भी बहुधा मीठा होता है। ये लोग स्वभावतः दूरदर्शी होते हैं। प्रायः ये लोग अपने शरीर को श्वेत और लाल रङ्ग से रङ्गते हैं। यदि ये रङ्ग न पोतें तो युवती स्त्रियां और पुरुष देखने में कुरूप न जान पड़ें। वृद्ध होने पर ये लोग बड़े ही कुरूप हो जाते हैं। इन लोगों का शरीर कोयले की तरह काला होता है। ये लोग एक विचित्र प्रकार से बाल गूंधते हैं। भिन्न भिन्न गोत्रों की केश-रचना-प्रणाली स्वतन्त्र है; कोई सिर मुड़ा डालते हैं; कोई बड़ी बड़ी जटायें धारण करते हैं; कोई मस्तक के बीच में शिखा रखते हैं; और कोई ख़ूब छोटे छोटे बाल छँटवाते हैं, और उन्हें आच्छादित करते हैं। इन लोगों के शरीर में रोंगटे अधिक नहीं होते; किन्तु बिलकुल बे-रोंगटे के भी ये नहीं पाये जाते। डाढ़ी मोछ तो प्रायः इन लोगों के होता ही नहीं। यदि भाग्यतः किसीके हो भी गया तो, फिर उसके अहङ्कार का ठिकाना नहीं! वे भौंहों को कतरा डालते हैं।

इन लोगों में जन्म के अन्धे, बहरे, लूले, लङ्गड़े, प्रायः नहीं होते। इनमें बोझ ढोनेवाले सिर पर एक मोटी रस्सी बांधते हैं। इसी कारण मस्तक के बीच में दाग़ हो जाता है। ये दाग़ प्रायः स्त्रियों में अधिक देखे जाते हैं। कारण यह है कि स्त्रियोंही को ईन्धन आदि भारी भारी बोझ ढोने पड़ते हैं। बाल्यावस्था से ही बोझा ढोने के कारण इनकी सारी खोपड़ी में रस्सियों के से नीचे ऊंचे दाग़ हो जाते हैं। अण्डमनी ६०, ६५ वर्ष तक जीते हैं।

इन लोगों में प्रायः जन्म के पागल नहीं होते। पर नर-हत्या करने की प्रबलेच्छा इन सभों को कभी कभी बेतरह पागल बना देती है। इस प्रकार के पागल कच्चा मांस, मछली इत्यादि खाने लग जाया करते हैं। उस अवस्था में, किसी मनुष्य की हत्या करने पर, उसकी चर्बी को ये खाते हैं, और उसके गरम लोहू का पान करने लग जाते हैं! कुछ दिनों तक ये पागल बड़ा ही उपद्रव करते हैं; किन्तु

शीघ्र ही उससे कोई दूसरा पूर्व-हत्या का बदला लेता है; अर्थात् उसे मार डालता है।

पोर्टमन साहब का कथन है, कि इन लोगों में जिसकी बुद्धि तीव्र होती है उसका चेहरा भी कुछ साफ़ सुथरा होता है; श्रौर उसका स्वभाव भी क्रोधी होता है। चालीस बर्ष के बाद इन लोगों की बुद्धि, इस देश के बुड्ढों की भांति, सठिया जाती है। तब ये लोग अधिक बर्बर श्रौर लड़ाके हो जाते हैं।

परस्पर के व्यवहार में ये लोग धीर श्रौर मृदु स्वभाव के होते हैं; परन्तु क्रोध इनको बहुत ही शीघ्र आ जाता है। ये लोग बड़े ही निष्ठुर, ईर्षालु विश्वास-घातक, श्रौर वैर-निर्यातन-प्रिय होते हैं। इन लोगों के हृदय में उपकार अथवा अनिष्ट की बातों का स्मरण अधिक दिन तक नहीं रहता। कृतज्ञता किस वस्तु का नाम है, यह ये लोग बिलकुल नहीं जानते। ये लोग अपनी अपनी पत्नियों को ख़ूब प्यार करते हैं; श्रौर अपने घरवालों से अच्छे वर्त्ताव के साथ मिलते हैं; किन्तु जितने बुरे वर्त्ताव हैं उसे दूसरे के लिये रख छोड़ते हैं। ये लोग बड़े ही आमोद-प्रिय, मृगयासक्त श्रौर स्वाधीन-चित्त के मनुष्य होते हैं। ये किसी काम को अधिक देर तक करते रहना नहीं पसन्द करते। स्त्रियों की बुद्धि पुरुष की अपेक्षा कम होने पर भी एक बार ही कम नहीं होती। वृद्धा स्त्रियों को, ये लोग, अधिक प्रतिष्ठा करते हैं। स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा अधिक दिन तक जीवित रहती हैं; श्रौर वृद्धावस्था में पुरुषों की भांति सठिया नहीं जातीं। अण्डमनी लोग पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को निकृष्ट समझते हैं। स्त्रियां काम करने के कारण स्वामी के निकट दासी के समान होती हैं। इन लोगों के सब कामों को स्त्रियां करती हैं।

इनकी दृष्टि युरोपियनों के सदृश तीक्ष्ण नहीं होती; परन्तु काम पड़ जाने पर कभी तीक्ष्ण भी हो जाया करती है। ये लोग सभ्य जातियों की भांति मनोमुग्धकारी सुगन्धित पुष्पों के प्रति अनुराग दिखाना बिलकुल नहीं जानते। फूलों से निज शरीर को भूषित करना भी नहीं जानते। ये अन्धकार में, केवल घ्राण द्वारा, किसी को भी नहीं पहचान सकते। पोर्टमन साहब के मत से अण्डमनियों की कोई भी इन्द्रियां सभ्यजाति की अपेक्षा तेज़ नहीं होती; पर कभी कभी अभ्यास श्रौर काम पड़ जाने पर तेज़ भी हो जाया करती हैं।

अण्डमनियों के नाम तीन प्रकार के होते हैं। (१) गर्भावस्था में जो नाम रक्खा जाता है वह नाम जीवन पर्य्यन्त लिया जाता है। (२) पैदा होने पर दूसरा नाम रक्खा जाता है। प्रत्येक गोत्र में, इस प्रकार के नाम, २० से अधिक नहीं होते। (३) यमज (जोड़ीवां) बालक के भूमिष्ट होने पर उस का नामकरण होता है। यदि किसी की प्रथम सन्तति मर जावे तो भविष्य में जो दूसरी सन्तति उत्पन्न होती है उसको प्रथम बालक के नाम से पुकारते हैं। अण्डमनियों का विश्वास है कि मृत बालकही फिर आकर जन्म धारण करता है। ऐसे ऐसे भद्दे विश्वास हमारे देश में भी बहुतेरों को होते हैं। अण्डमनी बालिकायें जब युवा अवस्था को प्राप्त होती हैं, तब वे किसी ऐसे पुष्प के नाम से पुकारी जाती हैं जो कि परिस्फुटित होनेवाले फूल हैं। श्रौर, स्त्री जाति की अवस्था भी ठीक उन्हीं परिस्फुटित होनेवाले पुष्पों के सदृश बोध होती है। यही मत इस देश के साहित्य-सेवियों का भी है। जैसे पुष्पों से बीज श्रौर फिर उससे पैाधा उत्पन्न होता है, ठीक वही अवस्था मानव-जन्म की भी है। अतएव दोनों ही एक से मिलते जुलते हैं। अण्डमनी लोग कितने ही सम्मान-प्रदर्शक नाम भी व्यवहार करते हैं। लड़के बाले, माता पिता को नाम लेकर पुकारते हैं। युवक श्रौर युवतियां गुरुजनों के साथ वार्त्तालाप करते समय उनके पुकारवाले नाम नहीं लेतीं।

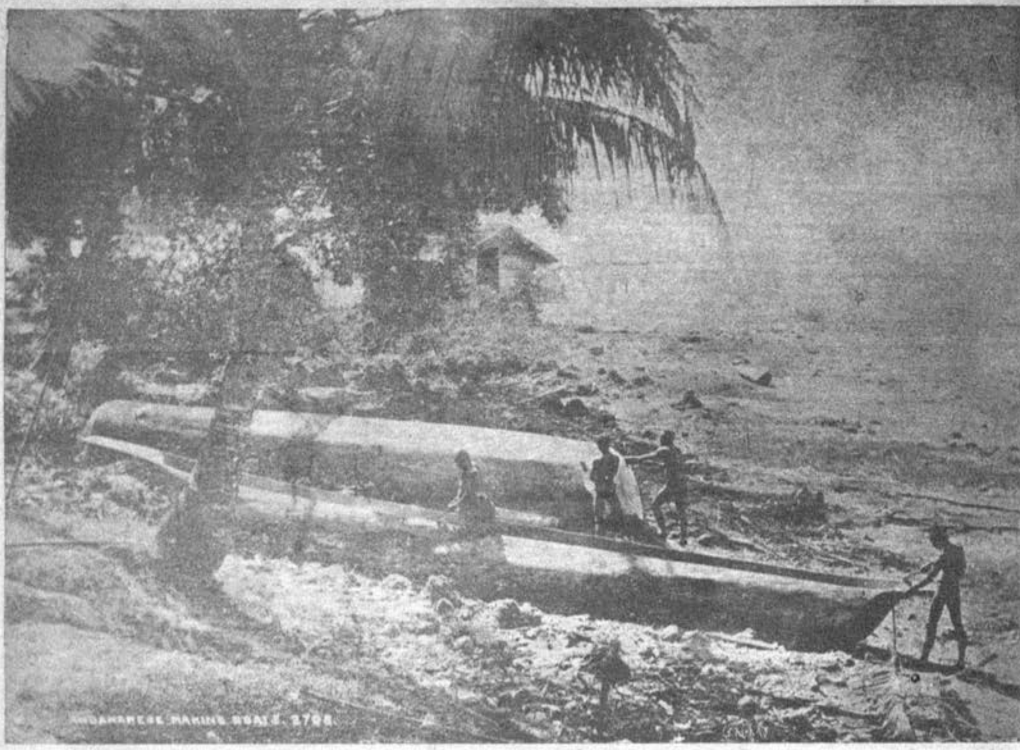
ये लोग केवल एक ही विवाह करते हैं। विवाह की प्रथा उत्तम न होने पर भी विवाह के पश्चात् ये लोग परस्पर एक दूसरे के ऊपर अनुरक्त



अण्डमनवासी कछुओं का शिकार कर रहे हैं।



अण्डमनी नाच।



अण्डमनवासी नाव बना रहे हैं।



अण्डमनवासी मछली मार रहे हैं।

रहते हैं। अण्डमनी लोग बीमार होने पर गेरू मिट्टी का लेप शरीर में करते हैं और उसे खाते भी हैं। ज्वर आने तथा सिर में पीड़ा होने पर, ये लोग, मस्तक से, और फोड़ा होने पर फोड़ा से दूषित रक्त को निकाल डालते हैं। किसी स्थान में पीड़ा होने पर ये उस जगह मनुष्य के हाड़ों का माला पहनते हैं। ये लोग कुछ पथ्यापथ्य पर भी ध्यान रखते हैं।

ये लोग पेड़ पर चढ़ने, शीघ्र चलने, तथा दौड़ने में बड़ेही दक्ष होते हैं। "आर-या उटोरा" लोग तैरने में बड़े ही निपुण होते हैं। वे मानों एक प्रकार के जलचर जीव ही हैं। ये लोग समुद्र की लहरों में धनुर्बाण द्वारा मछलियों के मारने में बड़ी ही पटुता दिखलाते हैं।

अण्डमनी, स्वप्न और ज्ञानी मनुष्यों की भविष्यद्वाणी पर बड़ा ही विश्वास करते हैं। ये लोग दो से ऊपर, भली भांति, नहीं गिन सकते। पर, हां, बड़ी कठिनता से पांच तक किसी तरह गिन लेते हैं।

अण्डमनी लोग बड़े ही मैले होते हैं; इसीसे वे एक स्थान में अधिक दिन तक नहीं रह सकते। यही कारण है जो ये लोग स्थायी या बड़े झोपड़े नहीं बनाते। हर गांव में कम से कम १४ झोपड़े होते हैं। झोपड़े अण्डे की भांति गोलाकार होते हैं। गांव के मध्य में थोड़ा खुला मैदान नाच के लिये रख छोड़ा जाता है। झोपड़ा सामने ४ फुट और पीछे ८ इञ्च मात्र ऊंचा होता है। झोपड़े के ठाठ को घास पात से छा देते हैं। झोपड़े के चारों तरफ दीवार नहीं होती। झोपड़ों की लम्बाई चार फुट और चैाड़ाई ३ फुट तक होती है। एक झोपड़ा एक परिवार के निर्वाह के लिये यथेष्ट होता है। गांव के एक प्रान्त में अविवाहित पुरुषों के लिए, तथा दूसरे प्रान्त में अविवाहिता कुमारियों के लिये, सभों की अपेक्षा एक बहुत बड़ा झोपड़ा होता है।

यों तो हर एक अण्डमनी अपने को प्रधान समझता है; किन्तु गोत्र और अवस्था में जो सबसे बड़ा होता है, उसकी शक्ति कुछ अधिक होती है। किसी साधु-स्वभाव, शिकारी, बहुदर्शी, और युद्ध में साहसी वीर को अण्डमनी अपना सर्दार निर्वाचित करते हैं। वास्तव में ये लोग म्यूनिसिपल कमिशनरों की भांति "वोट" की सहायता से नहीं नियत किये जाते। यह असभ्य जाति वृद्धों का सम्मान करती है। किसी के अपराध तथा अत्याचार करने पर, न्याय पाने के हेतु, किसी दूसरे के निकट ये नहीं दैाड़े जाते; आप ही उसे उचित दण्ड देते हैं। ये लोग नर-मांस नहीं खाते।

इन लोगों की लिखने पढ़ने की कोई भाषा नहीं है। आपस में हार्दिक भावों को प्रगट करने के लिए कोई संकेतार्थ भी नहीं निर्दिष्ट है। प्रत्येक गोत्र की भाषा प्रायः स्वतन्त्र होती है, जिसे अन्य गोत्र का मनुष्य कदापि नहीं समझ सकता।

इन लोगों के यहां एक प्रकार की दीक्षा वा संस्कार होता है, जो बारह से सोलह वर्ष के भीतर हो जाता है। उस समय से दीक्षित मनुष्य किसी खाद्य वस्तु में से एक पदार्थ को छोड़ देता है। इसके कई एक वर्षों के उपरान्त, कुछ नृत्योत्सव आदि की रीति करने पर, फिर वह (त्याज्य) पदार्थ खाया जा सकता है। इन लोगों की वैवाहिक प्रथा बड़ी ही सीधी सादी, आडम्बर विहीन, होती है। गांव के मुखिया लोग जब किसी युवक युवती के मनोगत अभिप्राय को जान लेते हैं, कि अमुक युवा के हृदय में अमुक युवती से विवाह करने की अभिलाषा जागृत हुई है, तब उस युवती को वे एक निर्जन कुटी में बैठा देते हैं। उस समय वर जङ्गल को भाग जाता है। तब कुछ देर तक गांव-वालों में लड़ाई झगड़ा सा होता है। उसके बाद वे उसे जङ्गल से इस भांति पकड़ लाते हैं मानों वह (वर) व्याह करने में सम्पूर्ण अनिच्छुक है। तब वर को ले जाकर वे कन्या की गोद में बिठा देते हैं। बस, विवाह हो जाता है। विवाह होने के बाद नव-दम्पति परस्पर बहुतही साधारण भाव से वार्तालाप करते

हैं; और, कम से कम, एक महीने तक एक दूसरे के प्रति लज्जा भी कुछ कम नहीं प्रकाश करते। फिर, इसके पीछे एक साथ वे घर गृहस्थी करने लग जाते हैं।

बालकों की मृत्यु होने पर उनके माता पिता झोपड़े में ले जाकर शव को गाड़ देते हैं। इसी प्रकार युवाओं को भी, एक छोटे से गड़हे में, खोद कर, वे गाड़ देते हैं। अधिक सम्मानित मनुष्य के मृतक-देह को गठरी में बाँधकर वे पेड़ से लटका देते हैं। तीन मास तक फिर उस ओर कोई नहीं जाता। तब तक मृतक के आत्मीय एक प्रकार की धूमिल मिट्टी शरीर में लगाते हैं; और नाचना बन्द रखते हैं। यही इन लोगों का सूतक है। तत्पश्चात् मृतक के अवशिष्ट हाड़ गड्ढे से खोद अथवा पेड़ से उतारकर वे धो डालते हैं। तब उसके छोटे छोटे टुकड़े बना कर ये उन्हें आभूषणों की भांति पहनते हैं। इन लोगों का ऐसा विश्वास है कि इस गहने के पहनने से शरीर में किसी प्रकार का रोग नहीं उत्पन्न होता। अशौच बीत जाने पर ये नाचते हैं; और शरीर की मिट्टी को भी धो डालते हैं।

बड़े अण्डमनवासी जब अधिक दिनों के बाद परस्पर एक दूसरे से मिलते हैं, तब खूब ज़ोर से रोते हैं! यह रोना कभी कभी लगातार कई घण्टों तक होता है। "औक्क्रे" गोत्र के अण्डमनी परस्पर मिलने पर एक दूसरे के गोद में बैठ जाते हैं; आदर के साथ शरीर पर हाथ फेर कर प्यार करते हैं; और चुपके से दो एक बूंद ठण्ढे आंसू भी गिरा देते हैं। ये लोग बिदा होते समय एक दूसरे के हाथ में फूंक देते हैं। उस समय कुछ कहना अथवा आवेग प्रकाश करना शिष्टता के विरुद्ध है। अण्डमनी क्रोध, अनुराग, विराग आदि से युक्त मनुष्य के समान, केवल एक ईश्वर पर विश्वास करते और उसे मानते हैं। वही दण्ड देता है; वही आंधी चलाता है। उसे कोई किसी प्रकार नहीं सन्तुष्ट कर सकता। ईश्वर जिस काम से रुष्ट होता है, अण्डमनी लोग उसे कदापि नहीं करते। ये लोग उसकी पूजा, आराधना, तथा वन्दना, बलिदानादि नहीं करते। और न ये लोग ईश्वर की भक्ति ही करते हैं। ईश्वर के व्यतिरिक्त इन लोगों के और भी जङ्गल, तथा समुद्र के, एक एक उपदेवता हैं। ये इन दो उपदेवताओं पर भी विश्वास करते हैं। अण्डमनियों का ऐसा विश्वास है कि मृत्यु के पीछे उनकी आत्मा भूगर्भ के किसी विशेष स्थान को चली जाती है। पापियों का दण्ड मिलना, धर्म्मात्माओं का पुरस्कार पाना, तथा स्वर्ग नरकादि के विषय में इन लोगों को कुछ भी विश्वास नहीं है। ये लोग एक प्रकार सम्पूर्ण नग्न रहते हैं। पुरुष केवल कमरबन्द तथा हार मात्र, और स्त्रियां पांच छः पत्तों का गुच्छा तथा वृक्षों की छाल मात्र से अङ्ग को ढाँकती हैं।

ये लोग खेती करना बिलकुल नहीं जानते; और अंगरेज़ी अधिकार होने के पहले कोई पशु पक्षी भी नहीं पालता था। किसी बड़े पेड़ के कुन्दे के भीतरी भाग को खोदकर ये डोंगी बनाते हैं। ये डोंगियां अधिक दिनों तक स्थायी नहीं रह सकतीं। ये खाना पकाकर खाते हैं। इन लोगों के बरतन मिट्टी के होते हैं। जब से ये लोग तूफान से डूबे हुये जहाज़ों का लोहा आदि पाने लगे हैं, तभी से इन्होंने लोहे का व्यवहार सीखा है। नहीं तो इसके पहले मछलियों के काँटे इत्यादि से ये लोहे का काम लेते थे। ये लोग बांस की टोकनी, काठ की बाल्टी, और बेंत के छिलके की चटाई उत्तमता से बना सकते हैं। इन लोगों के लिए नृत्य और वाद्य ही अधिक आमोददायक है। इन लोगों के नांच पांच प्रकार के होते हैं *।

एक बङ्गनारी।

---

* यह लेख माननीय 'प्रवासी" सम्पादक श्रीयुक्त बाबू रामानन्द चट्टोपाध्याय, एम० ए०, के "बंगला" लेख का आंशिक अनुवाद है, जिसके हेतु मैं उन महोदय की अतिशय अनुगृहीता हूं। अनुवादिका।

एक अद्भुत घटना।

पाठक ! आप लोगों ने समाचार पत्रों में अवश्य पढ़ा होगा, कि गत ता० ३१ अक्तूबर सन् १९०३ ई० को, अकस्मात् पृथ्वी के प्रायः सब स्थानोंके तार-यन्त्र एकाएक, आठ बजे के इधर उधर, बन्द हो गये। पहले उनसे कुछ विलक्षण खटपट शब्द सुनाई पड़े, परन्तु पीछे कितनाही खटपटाये जानेपर भी न उनमें से किसी प्रकार की ध्वनि नहीं निकली; जब कभी निकली भी तो वही खट पट की। इस प्रकार, पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक, क्षण भर में समाचार पहुँचाने की शक्ति बन्द हो गई। पहले यह दशा फ्रान्स देश के एक प्रधान नगर के तार घर में हुई, और थोड़ेही काल में कुल योरोप, अमेरिका, तथा भारतवर्ष और अन्य देशोंके सामुद्रिक तार अकस्मात् बन्द हो गये। यह अवरोध प्रायः पांच बजे दूसरे दिन तक रहा। फिर आपही आप जिस प्रकार बन्द हो गया था उसी प्रकार वह जाता भी रहा।

उस सर्वशक्तिमान ईश्वर की सृष्टि में प्रतिदिन अद्भुत अद्भुत घटनायें हुआ करती हैं। क्षुद्रबुद्धि मनुष्य का क्या सामर्थ्य है कि वह उनमें से किसी एक का भी पूर्णतः कारण जान सकै। किन्तु, वह अपनी उसी क्षुद्रबुद्धि के अनुसार उस नाटकी की लीलाओं का भेद जानने का यत्न करता है। वह यद्यपि उस सर्वशक्तिमान वैज्ञानिक के भेद को नहीं बतला सकता, तौभी उसकी अपूर्व और अपरम्पार शक्ति का परिचय वह कभी कभी अवश्य दे सकता है

पूर्वोक्त घटना और घटनाओं से किसी प्रकार कम आश्चर्यजनक नहीं है। क्या कारण है कि तार के खट खट शब्द अकस्मात् सब देशों में बन्द हो गये ? फिर क्यों कुछ देर बाद आपही आप पूर्ववत् हो गये ? उस सर्वगुणसम्पन्न की किस शक्ति द्वारा यह घटना हुई, इस बारे में सब वैज्ञानिक सहमत नहीं हैं; परन्तु अधिकतर वैज्ञानिकों का मत मैं सरलता से लिखने का प्रयत्न करता हूं।

पाठक ! आप लोगों ने चुम्बक अवश्य देखा होगा, तथा ध्रुवदर्शक सूई को भी आप जानते होंगे, जो कि सर्वदा प्रायः उत्तर और दक्षिण की दिशा दिखलाती है। चुम्बक, प्राकृतिक और कृत्रिम दो प्रकार के होते हैं। लोहे में एक युक्ति से बिजुली की धारा देने से लोहा चुम्बक हो जाता है। बिजुली की धारा का किसी प्रकार का सम्बन्ध चुम्बक से अवश्य है, क्योंकि चुम्बक से बिजुली की धारा, तथा धारा से चुम्बक बनता है। साधारणतः बिजुली की धारा कुछ पदार्थों के योग से, जिनमें रसायनिक संयोग होता है, उत्पन्न होती है; और देशी तार के यन्त्रों में रासायनिक द्रव्यों से उत्पन्न की हुई धारा काम में लाई जाती हैं; किन्तु दूर दूर देशों के, समुद्र द्वारा जानेवाले, तारों में, विशेष शक्तिवाले डैनामो (Dynamo) नामी चुम्बकीय यन्त्र से धारा उत्पन्न की जाती हैं। इन दोनों धाराओं में कुछ अन्तर नहीं है; दोनों के गुण और स्वभाव एक ही हैं। दो स्थानों के यन्त्र इन्हीं तारों से जुड़े रहते हैं। जब एक स्थान पर का तार दबाया जाता है, तब दूर-देशस्थ तार के यन्त्र से, जिसमें एक लोहा रहता है, जुटकर वह उसको चुम्बक कर देता है। और यह लोहा चुम्बक होकर अपने समीपस्थ एक दूसरे लोहे को अपनी ओर आकर्षित कर उससे टकराता है, जिससे खट शब्द होता है। जब वह यहां छोड़ दिया जाता है, तब वहां का भी तार पूर्वोक्त लोहे से दूर हो जाता है। इस कारण चुम्बक हुआ लोहा फिर लोहाही रह जाता है; और आकर्षित लोहा अपने स्थान पर हट जाता है। पुनः दबाने से वही खट शब्द होता है। इन्हीं खट खट शब्दों को संकेत मान दूर देश में समाचार भेजा जाता है।

पूर्वोक्त कथन से भली भांति सूचित होता है कि हमारे तड़ित समाचार के तार का कुछ सम्बन्ध चुम्बक से है। हमारी पृथ्वी चुम्बक का कोष है। जैसे पृथ्वी के उत्तरी और दक्षिणीय ध्रुव हैं, वैसेही इसके चुम्बकीय ध्रुव भी हैं। जिस प्रकार उत्तरीय ध्रुव को देखानेवाला उत्तरीय ध्रुवतारा है, उसी प्रकार

चुम्बकीय ध्रुवों के दिखानेवाली ध्रुवदर्शक सूई है। जिस प्रकार विषुव रेखा से उत्तर जाने से ध्रुवतारे का उन्नतांश बढ़ता है, उसी प्रकार ज्यों ज्यों हमलोग उत्तर के जाते हैं ध्रुवदर्शक सूई का उत्तरी सिरा भी नीचे की ओर लटकता जाता है। भारतवर्ष में उत्तरीय झुकाव उत्तर में २° अंश से लेकर ६° अंश तक पूर्व में है, अर्थात् ध्रुवदर्शक सूई ठीक उत्तर की ओर नहीं रहती, २° से ६° तक उत्तर से पूर्व की ओर झुकी रहती है; तथा इसका उत्तरी नतांश (Magnetic Dip) ८° उत्तर से ४०° उत्तर तक है, अर्थात् सूई का उत्तरी छोर ८° से ४०° तक उत्तर में लटका रहता है।

जिस प्रकार पृथ्वी चुम्बक का कोष है उसी प्रकार विशाल सूर्य्य भी चुम्बक का एक बृहत् भण्डार है। इसकी चुम्बकीय धारा, किरणों की तरह, आकाशमार्ग में छिटका करती है, और कभी कभी भूतल की लहर-विशेष से उसका समागम हो जाता है। उसीको चुम्बकीय तूफान (Magnetic storm) कहते हैं। जिस प्रकार दो विरुद्ध प्रकार की विद्युत्-शक्तियां (Positive and Negative) आकाश में टकराकर विद्युत प्रकाश फैलाती हैं, और कभी कभी इस भूतल की ओर आकर्षित् हो, अपने मार्ग के वृक्ष, मकान, तथा जीवों को नाश कर देती हैं; उसी प्रकार सूर्य्य की चुम्बकीय लहरें पृथ्वी की विरुद्ध चुम्बकीय शक्ति को अपनी ओर आकर्षित कर, वायुमण्डल में एक अद्‌भुत् प्रकार का रक्त-पीत-वर्ण विद्युत-प्रकाश फैलाती हैं जिसको आरोरा बोरिएलिस (Aurora Borealis) कहते हैं। यह प्रकाश उत्तरीय और दक्षिणीय ध्रुव देशों में देख पड़ता है। जब तक दोनों शक्तियों का समागम हमारे वायुमण्डल में होता है तब तक तो बादलों में, विद्युत प्रकाश की तरह, आरोरा की रोशनी ही रहती है; किन्तु जब पृथ्वी की लहरें, स्वयं न आकर्षित हो, उन्हें अपनी ओर खींच लेती हैं, तब प्रकाश और चुम्बकीय तूफान दोनों होते हैं। वह यही घटना थी जिसके कारण गत ता० ३१ अक्तूबर को तड़ित समाचार के यन्त्रों का अवरोध हो गया था। उसी दिन स्काटलैण्ड देश के उत्तरीय भाग में आरोरा का बहुतही तीव्र प्रकाश दिखलाई दिया था। कई बार, और कई मिनट तक, आकाश ललित रक्त-पीत वर्ण के प्रकाश से आच्छन्न हो गया था।

वैज्ञानिक सेबिन (Sabine) साहब का मत है * कि चुम्बकीय तूफ़ान प्रति १० या ११ वर्ष विशेषकर हुआ करते हैं। वैज्ञानिक स्कावे (Schwabe) साहब का मत है कि जब हमलोग सूर्य्य के बिम्ब को किसी रङ्गीले शीशे से देखते हैं, तब उसमें कुछ काले काले धब्बे दिखलाई देते हैं। समय समय पर इन काले धब्बों की संख्या, आकार, इत्यादि में अन्तर पड़ा करता है, तथा प्रति १० या ११ वर्ष के बाद विशेष बड़े बड़े धब्बे देख पड़ते हैं। सेबिन साहब ने यह भी मालूम किया है कि जब जब सूर्य्य के बिम्ब में बहुत से और बड़े बड़े धब्बे देख पड़ते हैं, तभी तभी चुम्बकीय घटनायें इस भूलोक में विशेष कर हुआ करती हैं। यदाकदा लम्बी चौड़ी जलती हुई लपट सूर्य्य के किसी बड़े धब्बे को आक्रान्त कर लेती है। जिस समय ऐसी घटना सूर्य्यलोक में होती है उस समय चुम्बकीय तूफ़ान इस भूतल पर अवश्य आते हैं।

जब जब चुम्बकीय तूफ़ान आते हैं तब तब आरोरा बोरिएलिस का प्रकाश उत्तरीय वा दक्षिणीय ध्रुव देशों में अवश्य हुआ करता है। यदि कभी चुम्बकीय तुफ़ान के होने पर आरोरा का प्रकाश न देख पड़े, तो यही समझना चाहिये कि मनुष्य को देख नहीं पड़ा। लेकिन जब कभी बड़े प्रकाश का आरोरा देख पड़े तो चुम्बकीय तूफ़ान का अनुमान किया जा सकता है।

यदि यन्त्र से इस समय सूर्य्य का बिम्ब देखा जाय तो उसमें बड़े बड़े काले काले धब्बे देख पड़ते

* Ganot's Elements De Physique, translated by E. Atkinson Art. 716, pp. 699 and 700.

हैं। जिस समय इन धब्बों के चारों ओर जलती हुई लपट जाती देख पड़े; और उसके कुछ काल बाद न तो यहां आरोरा का प्रकाशही देख पड़े, और न चुम्बकीय तूफ़ानही आवै, तो समझ लेना चाहिये कि उक्त लपट की शक्ति पृथ्वी की आकर्षणशक्ति के मार्ग में न आकर बाहर ही बाहर चली गई। किन्तु वह शक्ति व्यर्थ नहीं गई। इस भूतल में नहीं तो आकाश के दूसरे खगोलों में, ख़ासकर ग्रहों में, किसी न किसी में, अवश्य चुम्बकीय तूफ़ान और प्रकाश हुआ होगा। ता० ३१ अक्तूबर को ऐसीही लपट सूर्य्य के एक बड़े धब्बे के चारों ओर जाती हुई देख पड़ी थी। और उसके कुछ ही काल पश्चात् तार के यन्त्रों से एकाएक निरर्थक खट खटाहट के शब्द सुन पड़े; और, फिर तो, थोड़ीही देर में, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, वे बिलकुल ही बन्द होगये।

एक वैज्ञानिक का मत है* कि प्रति ६०, ६१ वर्ष में आरोरा बोरियेलिस का प्रकाश बहुतही तीव्र हुआ करता है, तथा इस भूतल पर बड़े बड़े चुम्बकीय तूफ़ान भी आते हैं। अपने मत के समर्थन में उसने सन् १७२८, १७८० और १८४२ ई० में, पृथ्वी पर होनेवाले बड़े बड़े चुम्बकीय तूफ़ानों का उदाहरण दिया है। गत वर्ष, १९०३, भी सन् १८४२ ई० के बाद ६१ वां है। अतः इस घटना से उक्त वैज्ञानिक का मत बहुत ठीक मालूम होता है।

वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि सूर्य्य के इन बड़े बड़े धब्बों से चुम्बकीय तूफ़ानही नहीं होते, किन्तु प्रति वर्षण, मनुष्यों और दूसरे जीवों में भयानक रोग (विशेषकर कठिन मस्तकीय पीड़ा और विषम ज्वर)† तथा उनसे उनकी मृत्यु भी इन्हींके कारण हुआ करती है। यह भी कहा जाता है कि जब सूर्य्य में ऐसी दुर्घटनायें होती हैं तब उनका असर पृथ्वी की वार्षिक गति के मार्ग में भी पड़ता है। अर्थात् सूर्य्य के चुम्बकीय बल से पृथ्वी अपने मार्ग से किञ्चित् इधर उधर हो जाती है।

१७ नवम्बर सन् १८८२ ई० को सूर्य्य का बिम्ब फटता हुआ सा देख पड़ा था, और उसी दिन अमेरिका में एक बहुतही विकट और विस्मयोत्पादक अरोरा का प्रकाश हडसन की खाड़ी की ओर हुवा था, तथा उसी दिन चुम्बकीय तूफ़ान भी वहां आया था।

अभी तक कोई वैज्ञानिक यह नहीं बतला सका है कि इन काले धब्बों का चुम्बकीय असर हमारी पृथ्वी पर क्यों पड़ता है; और वे वस्तुतः क्या हैं? तथा सूर्य्य और दूसरे ग्रहों में चुम्बकीय बल कितना है? इस ईश्वर-सृष्टि में अभी अनेक अपूर्व बातें हैं जिनका मनुष्य को कुछ भी ज्ञान नहीं है; किन्तु तब भी हमलोगों को आशा करना चाहिये कि—

'जिन ढूँढ़ा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ'।

जीतनसिंह।

* Ganot's Physics, Art 1041, pp. 1090.

† भारतवर्ष तो, प्रथम ही से, प्लेग की महामारी से पीड़ित है। परमेश्वर न करै कि इन काले धब्बों का भी दुर्भाव इस दुखिया पर पड़े। 'दुर्बलो दैवघातकः'।

ब्रह्मदेश की स्त्रियां।

ब्रह्मदेश हिन्दुस्तान के पूर्व में है। इस समय वह बृटिश गवर्नमेण्ट के आधीन है। आजकल बहुत से हिन्दुस्तानी लोग नौकरी, व्यापार या अन्य किसी कारण से वहां जाकर रहने लगे हैं। ये लोग जब वहां से लौटकर घर आते हैं तब उस देश की रीति रिवाज, चाल ढाल आदि और विशेषतः स्त्रियों की दशा—के सम्बन्ध की अनेक बातें बतलाते हैं। आज हम अपने एक ऐसेही मित्र के लेख के आधार पर ब्रह्मदेश की स्त्रियों के सम्बन्ध में कुछ बातें लिखते हैं।

ब्रह्मा के निवासी बौद्ध हैं। वे गौतम-बुध के प्रचलित किये हुए धर्म्म के अनुयायी हैं। गौतम ने इसी भारत में जन्म लिया और यहीं से दूर दूर

तक अपना धर्म्म फैलाया। बुध की मूर्तियां, ब्रह्मा में, बड़ीही भाव भक्ति से पूजी जाती हैं। कोई कोई



बुद्ध की एक विशाल मूर्त्ति।

मूर्तियां बहुतही विशाल हैं, वे ध्यानस्थ मुद्रा में स्थापन की गई हैं। हिन्दुओं की तरह ब्रह्मावाले भी एक प्रकार, मूर्ति-पूजक हैं। वहां भी इस देश के से अनेक मन्दिर हैं। इन मन्दिरों को विलायत के लोग पैगोडा कहते हैं। इन मन्दिरों में से कोई कोई बहुत बड़े और बहुत प्रसिद्ध हैं। रंगून में एक बहुत बड़ा मन्दिर है। किसी किसी मन्दिर में बुध की प्रतिमा है, और किसी किसी में बुध का कोई अवशिष्टांश अथवा चिन्ह। इन मन्दिरों में बड़े प्रेम से भजन-पूजन होता है। स्त्री-पुरुष, दोनों, वहां जाते हैं; परन्तु स्त्रियां अधिक। इस विषय में, इस देश और ब्रह्मा की रीति रस्म में, बहुत कुछ समता पाई जाती है; परन्तु सामाजिक बातों में यहां और वहां की स्त्रियों में बड़ा अन्तर है। ब्रह्मा की स्त्रियां बहुत स्वतन्त्र होती हैं।

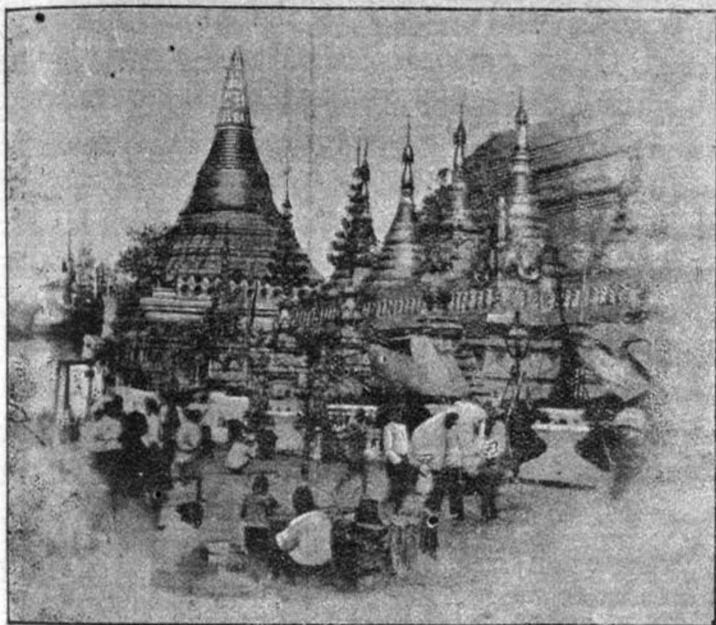
ब्रह्मदेश की स्त्रियां प्रशंसा करने योग्य बहुत रूपवती नहीं होतीं, तौभी उनका चेहरा और उठने बैठने, बोलने आदि का ढङ्ग ऐसा होता है कि देखने वाले का मन उनकी ओर आकर्षित हो ही जाता है। उनकी स्वतन्त्रता आजकल की नहीं है—वह प्राचीन समय से चली आ रही है। इसीलिये उस देश में स्वयम्वर के समान विवाह की प्रथा प्रचलित हैं। इस प्रकार की और इतनी स्वतन्त्रता एशिया खण्ड के किसी और देश की स्त्रियों को नहीं है। अतएव यदि यह कहा जाय कि ब्रह्मदेश की स्त्रियां अपने समाज में योरोपियन स्त्रियों की तरह स्वतन्त्र हैं तो अतिशयोक्ति का दोष न होगा। यद्यपि धर्म-सम्बन्धी बाधाओं के कारण वे अधिक विद्या-



बरमी स्त्री-पुरुष।

सम्पादन नहीं करतीं, तथापि वे गृहकार्य तथा व्यावहारिक ज्ञान में विशेष निपुण होती हैं। उनका विवाह सोलह सत्रह वर्ष की अवस्था में होता है। विवाह के विषय में वे बिलकुल स्वतन्त्र होती हैं,

क्योंकि वे अपनी इच्छा के अनुसार चाहे जिस पुरुष से विवाह कर सकती हैं। उनके माता पिता इस



एक पगोडा।

बात का आग्रह नहीं करते कि अमुक ही पुरुष के साथ विवाह करना चाहिये। परन्तु उस देश के अराकान-प्रान्त में स्त्रियों को अपने मातापिता के आज्ञानुसार विवाह करना पड़ता है। वहां की स्त्रियां उतनी स्वतन्त्र नहीं हैं जितनी अन्यान्य प्रान्तों की हैं।

उस देश की स्त्रियां जब तक चाहें अविवाहित रह सकती हैं। वे पुनर्विवाह भी कर सकती हैं; क्योंकि वहां विवाह एक प्रकार का सामाजिक व्यवहार (क़रार) समझा जाता है; और उसके नियम सब स्त्री पुरुषों के लिए एकसे ही हैं। अर्थात् उनके विवाह-सम्बन्धी नियम ऐसे नहीं हैं जो स्त्रियों से पुरुषों को अधिक सुभीते के हों। यही कारण है कि वहां स्त्री पुरुषों को अपना विवाह सम्बन्ध तोड़देने का अधिकार समान रीति से ही प्राप्त हैं। जब विवाह-सम्बन्ध तोड़ा जाता है तब सब सम्पत्ति के दो भाग किये जाते हैं। एक स्त्री को दिया जाता है, और दूसरा पति को। जिसके बुरे बर्ताव के कारण यह प्रसङ्ग उपस्थित होता है उसको सम्पत्ति का छोटा हिस्सा मिलता है। उस समय बाल बच्चों के भी हिस्से किये जाते हैं। जितने लड़के होते हैं उन्हें पति ले लेता है; और लड़कियों को स्त्री ले लेती है। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि यह काम गांव का मुखिया करता है, न्यायालय में नहीं होता।

ऊपर लिखी हुई बातों को पढ़कर कोई ऐसा न समझे कि ब्रह्मदेश में विवाह-सम्बन्ध तोड़ने के मामले बहुत से होते होंगे और बरमी विवाहित स्त्री-पुरुषों में गृह-सुख की न्यूनता होगी। अनुभव से जाना गया है कि वहां विवाहसम्बन्ध तोड़ने के बहुत कम प्रसङ्ग आते हैं। स्त्रियाँ अपने पति के काम-काज में बहुत सहायता देती हैं। पुरुष कुछ नया काम करने के पहले अपनी स्त्री की सम्मति अवश्य ले लेते हैं। जब पुरुष किसी कार्यवश कहीं बाहर चले जाते हैं तब उनकी स्त्रियां उनके सब काम काज की यथोचित देखभाल करती रहती हैं। ब्रह्मदेश की स्त्रियां परदे में नहीं रहतीं। वे चाहे जहां आ जा सकती हैं। जब घर पर उनके पति या पुत्र के कोई मित्र आते हैं तब वे उनका भली भांति आदर सत्कार करती हैं। गृहकार्य में दक्ष और सामाजिक व्यवहारों में कुशल होने के कारण वे अपने पति की बहुत सहायता कर सकती हैं; और इसी लिये, स्त्री पुरुषों में घनिष्ट प्रेमभाव रहता है। एक पति-पत्नी का जोड़ा यहां दिये गये चित्र में, (दूसरे पृष्ठ में) देखिए। पति शस्त्रधारी है; पत्नी उसके कन्धे पर हाथ रक्खे

खड़ी है। ब्रह्मदेश की स्त्रियां इस प्रकार खड़ा होना, चित्र उतरवाना, और सब के सामने अपने पति से बातचीत करना बुरा नहीं समझतीं।

ब्रह्मदेश के लोग इस बात को मानते हैं कि एक पुरुष के एक ही भार्या हो। उनके धर्मशास्त्र की भी यही आज्ञा है कि कोई पुरुष एक से अधिक स्त्रियों के साथ विवाह न करे। परन्तु श्रीमान लोग दो, तीन वा इससे भी अधिक स्त्रियों के साथ विवाह कर लेते हैं। सर्वसाधारण लोगों में इस बात की बड़ी निन्दा की जाती है।

इस देश के कोई कोई समाजसुधारक कहा करते हैं कि सामाजिक सुधार (चाहे वह स्त्रियों



श्वेडेगन का पैगोडा।

के सम्बन्ध में भी क्यों न हो) करने के लिये सरकार की सहायता अपेक्षित है। उन्हें इस बात का विचार करना चाहिये कि ब्रह्मदेश में स्त्रियों को, बिना किसी प्रकार के आन्दोलन के ही, सब सामाजिक स्वत्व प्राप्त हुए हैं; और अनुभव से सिद्ध है कि वे अपने स्वत्वों का उपयोग भी अच्छी तरह कर सकती हैं। यदि उनके धर्म सम्बन्धी विचारों में कुछ परिवर्तन हो जाय और वे अच्छी तरह विद्या सम्पादन करने लग जांय तो निस्संदेह बरमी स्त्रियां अपने समाज में और भी अधिक उपयोगी हो सकती हैं। वे व्यवहार में इतनी निपुण होती हैं कि व्यापार आदि का काम भी स्वयं कर लेती हैं। अदालत के कामों में और सरकारी मामलों में भी वे पुरुषों की सहायता करती हैं। यदि पुरुष पुलिस में नौकर हो और वह किसी काम के लिये बाहर चला जाय तो, उसकी अनुपस्थिति में, उसकी स्त्री उसके सब कामकाज को भली भांति सँभाल लेती है। यहां तक कि, बड़े अधिकारियों को यह मालूम ही नहीं हो सकता कि वह पुरुष अपने कामपर हाज़िर नहीं है।—माधवराव सप्रे।

पुस्तक-परीक्षा।

काव्य-रसायनम्। यह अलङ्कार-शास्त्र का ग्रन्थ है और संस्कृत में लिखा गया है। मूल्य इसका १ रुपया है। यह कलकत्ते के "नारायण" प्रेस में छपा है। यह नहीं मालूम कि इसे बेचता कौन है। इसके कर्ता पाटन के रहनेवाले "कवि श्रीशिवदत्त शर्म्मा" हैं। इसके निर्म्माता को अलङ्कार शास्त्र में विलक्षण विज्ञता जान पड़ती है; संस्कृत भाषा में भी आप को खूब ही व्युत्पत्ति है। पुस्तक की रचना सरल और मनोहर है। अलङ्कार शास्त्र के समान वादग्रस्त और किसी क़दर जटिल विषय को कर्ता ने बड़ी योग्यता से समझाया है। पुस्तक में प्रायः उन्हीं बातों का वर्णन है जिनका वर्णन आज तक होनेवाले अनेक आलङ्कारिक आचार्य्यों ने किया है। काव्य, वृत्ति, ध्वनि, रस, अलङ्कार, दोष, गुण आदि का इसमें सोदाहरण निरूपण है। कहीं कहीं शास्त्रार्थ भी है। कर्ता ने प्राचीन ग्रन्थों का मन्थन करके सब वर्ण्य विषयों का लक्षण कहीं कहीं वही पुराना, कहीं कहीं उससे कुछ मिलता हुआ, और कहीं कहीं भिन्न रीति का किया है। किसी किसी स्थल पर मम्मट भट्ट, जयदेव, विश्वनाथ और केशव मिश्र आदि पुराने पण्डितों के मत का खण्डन भी इसमें किया गया है। ऐसा करने में किसीके मत को कर्ता ने "उपेक्ष्य", किसीके मत को "असमीचीन" और किसीके मत को "अयुक्त" कहा है। आपने काव्य का लक्षण लिखा है—"काव्यं रम्या कवेः कृतिः"। यह लक्षण जगन्नाथ राय के किये हुए "रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्"–इस लक्षण की छायामात्र जान पड़ता है। पण्डित शिवदत्त ने अनुष्टुप छन्द में जो छोटे छोटे लक्षण कहे हैं वे बहुत अच्छे कहे हैं। ये लक्षण उन्होंने अपनी तरफ से बनाये हैं; परन्तु, उदाहरणों में, आपने प्रायः प्राचीनों ही के दिये हुए श्लोक उठाकर रख दिये हैं। पण्डित जी के विद्वत्व और अलङ्कार-ज्ञान की हम प्रशंसा करते हैं; परन्तु "काव्य-रसायनम्" के समान ग्रन्थ से, हम नहीं कह सकते, लोगों को कितना उपकार होगा। इस विषय के, इस समय, जितने पुराने ग्रन्थ हैं, उतनेहीं, हमारी समझ में, काफी समझने चाहिए थे। नये ग्रन्थ की बिलकुल आवश्यकता न थी। यदि पण्डित जी इतना श्रम किसी नवीन कविता अथवा और किसी विषय का ग्रन्थ लिखने में करते तो उससे विशेष लाभ होने की सम्भावना थी।

*

हिन्दी-पुस्तकों की खोज पर रिपोर्ट। नागरीप्रचारिणी सभा कई साल से हिन्दी पुस्तकों की खोज कर रही है। यह उसकी पहली रिपोर्ट है। रिपोर्ट १९०० ईसवी की है। एक वर्ष में जितनी पुस्तकों का पता लगा है उन्हीं सब की आलोचना इस रिपोर्ट में है। रिपोर्ट अँगरेज़ी में है। बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए०, ने उसे लिखा है, और संयुक्त प्रान्त की गवर्नमेण्ट ने छपाकर, गत वर्ष, उसे प्रकाशित किया है। ११ पृष्ठ में रिपोर्ट है और १३१ पृष्ठ में पुस्तकों की संक्षिप्त आलोचना। रिपोर्ट के अन्त में आलोचित पुस्तकों और उनके बनानेवालों के नाम की सूची है। १० प्लेटें भी हैं। रिपोर्ट में "रासो" के सम्बन्ध में लिखते समय, पृथ्वीराज आदि के समय के कुछ काग़ज़ पत्रों का ज़िकर आया है। उन्हीं की नक़ल (फोटो) दीगई है। 'प्लेटों' से मतलब उन्हीं नक़लों से है। ये प्लेटें प्रायः पुरानी हिन्दी में हैं; इसलिए दो एक को छोड़कर, उनका रूपान्तर प्रचलित हिन्दी में भी देदिया गया है; और उनका अनुवाद भी अँगरेज़ी में कर दिया गया है। इन्हीं सब ऐतिहासिक तत्वों और प्रमाणों की बहुमूल्यता का विचार करके गवर्नमेण्ट ने इस रिपोर्ट का दाम ५) रुपये रक्खा है। इसे प्रकाशित करने में दो वर्ष से भी अधिक समय लगा है; यह अफ़सोस की बात है। बात पुरानी हो जाने से उसका महत्व कम हो जाता है। इसलिए ऐसी रिपोर्ट को प्रकाशित करने में शीघ्रता होनी चाहिए।

यह रिपोर्ट बहुत योग्यता से लिखी गई है; पुस्तकों की खोज का काम भी अच्छा हुआ है। गवर्नमेण्ट ने शायद इसी कारण से खुश होकर अपनी सहायता बढ़ाई है। उसकी यह गुणग्राहकता प्रशंसनीय है। इस रिपोर्ट में १६९ पुस्तकों की आलोचना है। इनमें से १२ पुस्तकों के बनानेवालों का पता नहीं चला। शेष १५७ पुस्तकों को ९० ग्रन्थकारों ने बनाया है। इन ९० ग्रन्थकारों का समय इस प्रकार है–

ग्रन्थकार	काल
१	१२ वां शतक
२	१४ "
१	१५ "
२२	१६ "
१८	१७ "
१८	१८ "
१२	१९ "

शेष १६ ग्रन्थकारों का समय नहीं ज्ञात हुआ। जिन पुस्तकों की आलोचना इस रिपोर्ट में हुई है वे प्रायः सभी पद्य में हैं। दो चार जो गद्य में हैं उनकी भाषा ब्रज की है। इन १६९ में से एक पुस्तक सोलहवें शतक की लिखी है; कुछ अट्ठारहवें शतक की हैं; परन्तु बहुत करके सत्रहवें और उन्नीसवें शतक की लिखी हुई हैं। लिपि इनकी प्रायः देवनागरी है।

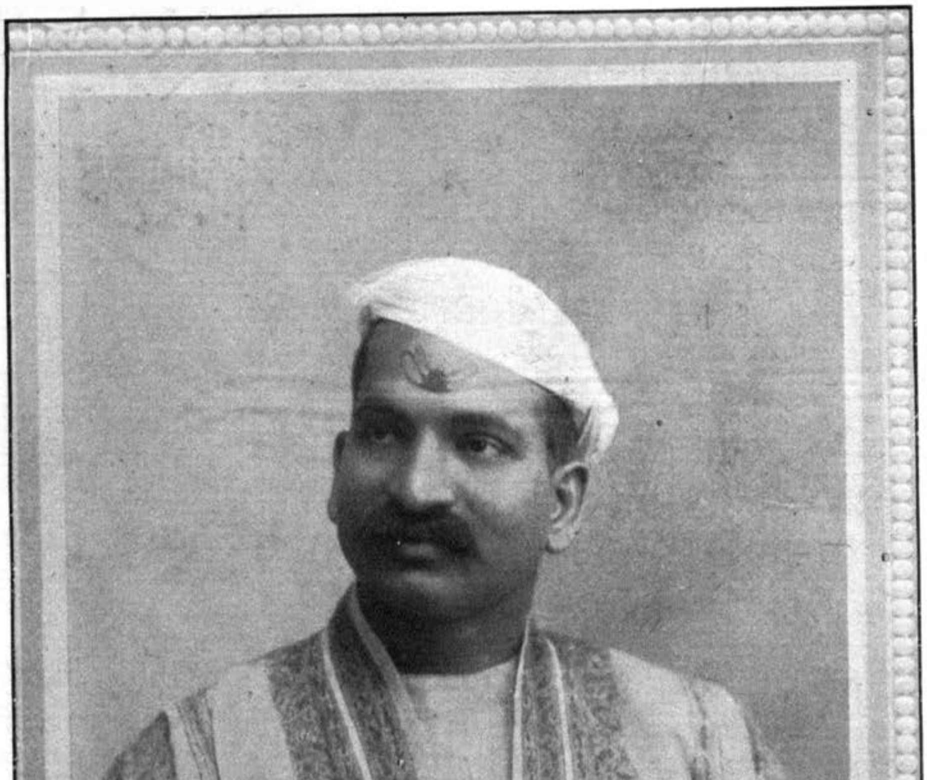
तुलसीदास के रामायण, मलिक महम्मद की पद्मावती और चन्द-बरदाई के रासो को, इस रिपोर्ट में, अच्छी आलोचना है। विशेष करके पिछले ग्रन्थ के सम्बन्ध में बहुतसी ऐतिहासिक बातों की विवेचना की गई है। प्रत्येक पुस्तक की आलोचना के चार विभाग किये गये हैं—(१) आदि, (२) अन्त, (३) विषय और (४) टिप्पणी। (१) में पुस्तक के आरम्भ का कुछ भाग, नमूने के तौर पर, दिया गया है, और (२) में अन्त का। (३) में पुस्तक के विषय का उल्लेख है, और (४) में रिपोर्ट-कर्ता की टिप्पणी में उनकी सम्मति और ग्रन्थकार का नाम आदि है। यही सब बातें अँगरेज़ी में भी लिख दी गई हैं। अँगरेज़ी में प्रत्येक पुस्तक की पृष्ठ-संख्या, उसका आकर प्रकार, उसकी लम्बाई चौड़ाई का भी उल्लेख है; और यह भी लिखा है कि वह पुस्तक कहां और किसके पास है।

इस रिपोर्ट से यह साफ़ ज़ाहिर है कि हिन्दी में हज़ारों अच्छी अच्छी पुस्तकें विद्यमान हैं; परन्तु वे बस्तों में बँधी पड़ी हैं। उनकी खोज और आलोचना की बड़ी ही आवश्यकता है। इस काम में गवर्नमेण्ट जो कुछ देती है उसका वह सद्व्यय करती है। नागरीप्रचारिणी सभा का उद्योग भी सर्वथा स्तुत्य है। यदि यह खोज बराबर जारी रही, तो, आशा है, हिन्दी के अनेक ग्रन्थरत्नों का पता लगै।

मनोरञ्जक श्लोक।

न संध्यां सन्धत्ते नियमितनमाज़ं न कुरुते
न वा मौञ्जीबन्धं कलयति न वा सुन्नतविधिम्।
न रोज़ां जानीते व्रतमपि हरेर्नैव कुरुते
न काशी मक्का वा शिव शिव न हिन्दुर्न यवनः॥

न सन्ध्या करते हैं, न नमाज़ ही पढ़ते हैं; न यज्ञोपवीत से काम, न सुन्नत से ही; न रोज़ा रखते हैं, न कोई व्रत ही करते हैं; न काशी को मानते हैं, न मक्का ही को हज करते हैं। क्या कहें; कुछ कहा नहीं जाता। शिव शिव, आज कल के लोग न हिन्दू में न मुसल्मान में।



मुन्शी नानकचन्द, सी० आई० ई०

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

१९०४

भाग ५] एप्रिल, १९०४ [संख्या ४

विविध विषय।

इस अङ्क में हमारे मित्र राय देवीप्रसाद जी के "मृत्युञ्जय" काव्य का आरम्भ हुआ है। इसमें सब ९१ पद्य हैं। यह काव्य अन्त्यानुप्रास रहित है। छन्द इसका द्रुतविलम्बित है; इसलिए इसमें अन्त्यानुप्रास की विशेष आवश्यकता भी नहीं। इसका स्वरूपही ऐसा है कि पढ़ते समय इसकी अनुप्रासहीनता कान को नहीं खटकती। इसका प्रवाह अकृत्रिम और रोचक प्रतीत होता है।

इस कविता का विषय यद्यपि असाधारण है तथापि कविता सरस है। यों तो जिसकी जिस विषय में रुचि होती है वही विषय उसको रुचिकर होता है। इस नियम के अनुसार शृङ्गार रस को बड़ी रसीली कविता भी उदासीन चित्त को नीरस प्रतीत होती है। कई महीनों से राय साहब के ऊपर ईश्वरी कोप सा है। उनके कई कुटुम्बी, एक के अनन्तर एक, मृत्यु ने ले लिए; उनका एक पुत्र भी उन्हींका अनुगामी हुआ; और एक कन्या भी। तिसपर भी इन दुःख-परम्पराओं को वे बड़े ही धैर्य से सहन कर रहे हैं। दुःख से उदासीनता, उदासीनता से वैराग्य और वैराग्य से विवेक होता है। इसीलिए इस काव्य में संसार के शोक-दृश्य दिखला कर पीछे से ज्ञान-चर्चा छेड़ी गई है।

मुन्शी नानकचन्द, सी० आई० ई०।

हिन्दोस्तान ऐसे देश में जहां जाति और धर्म्म की इतनी विभिन्नता और इतना विभ्राट् है वहां भिन्न धर्म्म के अवलम्बी, भिन्न प्रान्त के निवासी और भिन्न जाति में उत्पन्न पुरुषों को, जब हम, उनसे सब बातों में भिन्न स्वदेशी राज्यों में, बड़े बड़े पदों पर देखते हैं, तब यह भाव मन में तत्काल उदित होता है कि उन्होंने अपने बुद्धि-बल से, अपनी गुण-गरिमा से, यह अधिकार पाया

है। निज़ाम के यहां महाराजा कृष्णप्रसाद को सर्वोच्च पद पर देखकर यह बात मन में आये बिना नहीं रह सकती। इन्दौर के अधीश्वर होलकर महाराष्ट्रवंशीय हैं। महाराष्ट्र देश में, इस समय, अनेक राजकार्य-कुशल पुरुष हैं। उनके होते हुए इस तरफ़ के एक विजातीय सज्जन का, इन्दौर में, सर्व-प्रधान पद प्राप्त करना भी यही सूचित करता है, कि उनमें उस पद के कार्य-निर्वाह करने की विशेष योग्यता है। अत्यधिक योग्यता हुए बिना, ऐसे ऐसे पद, ऐसी दशा में, नहीं मिल सकते। मुन्शी नानकचन्द, सी० आई० ई०, यदि धुरन्धर राज-नीतिज्ञ, धुरन्धर राज्य-प्रबन्ध-कर्ता और धुरन्धर कार्य्यपटु न होते, तो शायद ही उनको महाराजा होलकर के दीवान होने का सौभाग्य प्राप्त होता। देशी अख़बारों के सम्पादक, इस देश में प्रायः उतनी आदर की दृष्टि से नहीं देखे जाते जितनी आदर-दृष्टि से पाश्चात्य देशों के सम्पादक देखे जाते हैं। वहां उनका बड़ा मान है; बड़ा आदर है। परन्तु मुन्शी नानकचन्द ने, अपने उदाहरण से, यह सिद्ध कर दिया है, कि स्वदेशी भाषा के सम्पादक भी बहुत कुछ योग्यता रखते हैं; और बड़े से बड़े पदों पर नियत किये जाने पर उस योग्यता का पूरा परिचय दे सकते हैं। मुन्शी नानकचन्द किसी समय सम्पादक थे। सम्पादकता करतेही करते उनको इन्दौर में जगह मिली।

महाराजा होलकर के राज्य में मुन्शी नानकचन्द वंशपरम्परा के जागीरदार हैं। वे देहली के रहनेवाले हैं। वही उनकी जन्म-भूमि है। उनका जन्म १८५९ ईसवी में हुआ। अर्थात् अभी उनकी उमर कुल ४५ वर्ष की है। उनके पितामह मुन्शी सूर्य्यभानु करनाल के नवाब के दीवान थे। उनके पिता मुन्शी उम्मैदसिंह परलोकवासी महाराजा तुकोजी राव होलकर, जी० सी० यस० आई०, के शिक्षक थे। उनको होलकर ने राय-बहादुर और मशीरुद्दौला का ख़िताब दिया था। यद्यपि वे महाराजा होलकर के शिक्षक थे, तथापि राज्य के और और काम काज भी वे करते थे, और अपने सत्परामर्श से महाराजा को बहुत सहायता पहुँचाते थे। मुन्शी उम्मैदसिंह का शरीरान्त होने पर उनका ख़िताब महाराजा होलकर ने, उनके पुत्र मुन्शी नानकचन्द को देना निश्चय किया। यह विधि १८६७ ईसवी में हुई। तब से नानकचन्द जी मशीरुद्दौला और राय-बहादुर हुए। मुन्शी नानकचन्द, जिनके दो एक लेख सरस्वती में छप चुके हैं, इनसे भिन्न हैं।

होलकर की राजधानी इन्दौर में नियत होने के पहले मुन्शी नानकचन्द एक मासिक पत्र के सम्पादक थे। "ख़ैरख्वाहे वैश्य" नामक एक मासिक पत्र वे उर्दू में निकालते थे। जैसा इसके नाम से सूचित होता है यह एक सामाजिक पत्र था। वैश्यों में जो अनेक कुरीतियां हैं, और जिनको दूर करने के लिए, इस समय, वैश्य कान्फरन्स इतना परिश्रम कर रहा है, उनसे होनेवाली हानियों का ज्ञान मुन्शी नानकचन्द को कोई बीस वर्ष पहले ही हो चुका था। इसीलिए उन्होंने यह पत्र निकाला और बराबर तीन वर्ष तक उसे निकालते रहे। इससे वैश्यों को बहुत लाभ पहुँचा; और जो कुरी-तियां, उस समय, नहीं दूर हो सकीं उनमें सुधार होने की आवश्यकता लोगों पर अवश्यही विदित हो गई। लोगों का ध्यान उस ओर आकर्षित हो गया। यही क्या कम था?

मुन्शी नानकचन्द का पत्र यद्यपि उर्दू में निकलता था, तथापि वे संस्कृत की शिक्षा बहुतही आवश्यक समझते थे, और अब भी वे ऐसा ही समझते हैं। वे संस्कृत का बड़ा आदर करते हैं। इसका प्रमाण उनके प्रयत्न से देहली में स्थापित हुई संस्कृत की पाठशाला है। यह पाठशाला अभी तक बनी है; और सुनते हैं, अच्छी तरह से चल भी रही है।

इन्दौर में जगह मिलने पर मुन्शी नानकचन्द जी को अपना "ख़ैरख्वाहे वैश्य" बन्द करना पड़ा। इन्दौर में उनकी कारगुज़ारी से महाराजा होलकर इतने प्रसन्न हुए कि १८८६ ईसवी में उन्होंने

मुन्शीजी को जुडीशियल सेक्रटरी (न्याय-विभाग का सहायक) नियत किया। तभी से सर्वसाधारण में उनकी विशेष प्रसिद्धि हुई। यह पद बड़ी ज़िम्मेदारी का है; और बहुतही विश्वसनीय और सम्माननीय पुरुषों को दिया जाता है। कोई पांच वर्ष तक मुन्शी जी ने इस अधिकार का उपभोग किया; और अपने काम से महाराजा होल्कर को पहले से भी अधिक ख़ुश किया। इसका फल यह हुआ कि महाराजा ने इनकी योग्यता का विचार करके इनको अपना नायब दीवान नियत किया। इतनाहीं करके वे सन्तुष्ट नहीं हुए; उन्होंने एक दरबार किया; उसमें मुन्शी जी की बड़ी बड़ाई की; मुन्शी जी के काम से अत्यधिक प्रसन्नता प्रकट की; और १५००० रुपए नक़द, ख़िलत और एक बहुतही अच्छा सर्टिफ़िकेट (प्रशंसापत्र) उन्हें दिया।

जिस समय मुन्शी जी नायब दीवान थे उनको काम थोड़ा न था। इन्दौर के समान बड़ी रियासत के इतने बड़े अधिकारी को काम की कमी न थी; काम बहुत था। परन्तु कर्म्म-वीर पुरुष काम से नहीं डरते। विशेष काम करने का समय आने ही पर उनको अपनी योग्यता दिखलाने का अवसर मिलता है। १८९३ ईसवी में मुन्शी नानकचन्द ने नायब-दीवानी का काम सँभाल कर रेसीडन्सी वकील का भी काम किया। यह काम भी कोई ऐसा वैसा नहीं है। रेसीड्यण्ट के यहां रियासत सम्बन्धी अनेक झञ्झट लगे ही रहते हैं। वे सब वकील के ही मारफ़त निपटाये जाते हैं। परन्तु मुन्शी नानकचन्द ने इस काम को भी सफलता पूर्वक निबाहा।

१८९५ के दिसम्बर में मुन्शी जी को इन्दौर दरबार का सबसे ऊँचा पद मिला। वे दीवान हो गये। २४ आक्टोबर १८९८ ईसवी तक उन्होंने दीवानी की। मुन्शी नानकचन्द स्वतन्त्र प्रकृति के पुरुष हैं; जो बात उनको न्याय्य समझ पड़ती है उसे, वे, हानि लाभ का ज़रा भी विचार किये बिना, निर्भय होकर, तुरन्त कर डालते हैं। यह बहुतही प्रशंसनीय गुण है। इन्दौर के समान बड़े राज्य के दीवान में यह गुण होना और भी सौभाग्य की बात है। महात्माही सच्चे न्यायप्रिय होते हैं। किरातार्ज्जुनीय में, भारवि ने, कहा है—

वसूनि वाञ्छन् न वशी, न मन्युना,
स्वधर्म्म इत्येष निवृत्तकारणः।
गुरूपदिष्टेन रिपौ सुतेऽपि वा
निहन्ति दण्डेन स धर्म्मविप्लवम् ॥

अर्थात् वह राजा सर्वथा जितेन्द्रिय है। न वह क्रोध में आकर कोई काम करता है; और न रुपए के लालच से। जो कुछ वह करता है, कारण-रहित होकर, अपना धर्म्म समझ कर ही करता है। न्याय करने के समय वह पुत्र और शत्रु को सम समझता है; और मनु आदिक महात्माओं की कही हुई विधि के अनुसार दोनों को दण्ड देकर धर्म्म-विप्लव को दूर करता है। जान पड़ता है मुन्शी नानकचन्द इसी नियम के अनुयायी हैं। क्योंकि न्याय-विभाग से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों में उनकी सम्मति के अनुकूल काररवाई न होनेही से उन्होंने अपनी दीवानी से इस्तेफ़ा दे दिया। सम्मति-विभिन्नता के कारण ही उन्होंने इतने ऊंचे पद को निःसङ्कोच होकर १८९८ ईसवी में छोड़ दिया। सच है—

उन्नतो न सहते तिरस्क्रियाम्।

विलायत में चेम्बरलेन साहब ने भी अपनी इच्छा के अनुकूल काम न होते देख अभी, कुछ दिन हुए, अपने पद को तृणवत् समझ कर त्याग दिया।

मुन्शी नानकचन्द जब तक दीवानी के आसन पर आसीन रहे तब तक राज्य-चक्र उन्होंने बहुत अच्छी तरह से चलाया। अनेक बातों में उन्नति हुई। १८९६-९७ की वार्षिक रिपोर्ट में मध्य भारत के एजण्ट गवर्नर जनरल ने आपकी बड़ी बड़ाई की; और यह भी कहा कि मुन्शी जी ने रियासत के काम में बहुत से अच्छे अच्छे सुधार किये। मुन्शी नानकचन्द की योग्यता का इससे अधिक प्रमाण और क्या हो सकता है, कि दीवानी छोड़ने के सातही महीने बाद महाराजा शिवाजी राव होलकर को, कृपा करके, उन्हें फिर बुलाना पड़ा।

अतएव २४ मे १८९९ को वे दुबारा दीवान नियत हुए। इस पद पर मुन्शी जी अब तक विद्यमान हैं। जबसे महाराजा होलकर ने राज्य का परित्याग करके विरक्तता स्वीकार की है, और राज्य का प्रबन्ध एक कौंसिल के द्वारा होने लगा है, तब से राज्य के सुशासन का दार मदार विशेष करके मुन्शी जी ही पर है। जिस दिन से ये दुबारा दीवान नियत हुए उस दिन से राज्य-प्रबन्ध में इनको पहले की अपेक्षा अधिक स्वच्छन्दता मिली। इसीलिए वे अब तक इस पद पर बने हैं, और अपनी विज्ञता और बहुदर्शिता से प्रजा को अपने सुशासन का लाभ पहुँचा रहे हैं।

उस वर्ष जो महाअनर्थकारी अकाल पड़ा था उसमें मुन्शी नानकचन्द जी ने इन्दौर-राज्य की प्रजा को दुर्भिक्ष की पीड़ा से परित्राण पाने का यथाशक्य बहुतही अच्छा प्रबन्ध किया था। इस प्रबन्ध से अँगरेज़ी गवर्नमेण्ट को बड़ी प्रसन्नता हुई। इस उपलक्ष में उन्हें, २४ मे १९०० को, "कैसरे हिन्द" नामक सोने का तमगा मिला। इस सम्बन्ध में, इन्दौर के भूत-पूर्व एजण्ट गवर्नर जनरल, कर्नल बार ने मुन्शी जी को इस प्रकार पत्र लिखा—

"सुवर्ण पदक पाने पर हम आपको बधाई देते हैं। हम बहुत प्रसन्न हैं कि आपको यह सम्मान सूचक पदक मिला। जिन लोगों को यह पदक मिला है उनमें से दो ही एक ऐसे हैं जो इसको पाने के आपसे अधिक योग्य हैं। अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए आपने बहुत वर्षों तक इन्दौर का राज्य-प्रबन्ध अत्यन्तही उत्तमता से किया है। गवर्नमेण्ट के द्वारा, आप के उत्तम कामों पर प्रसन्नता प्रकट करने का यह पदक एक प्रकार का चिन्ह है; और हम आशा करते हैं, कि यह पहला चिन्ह है"।

"पहला चिन्ह है"—इस वाक्य से यह सूचित हुआ कि इसके आगे, दूसरा तीसरा चिन्ह भी आवैगा। कर्नल बार का भविष्यवाद सच निकला। गवर्नमेण्ट की प्रसन्नता का दूसरा चिन्ह भी आया। मुन्शी नानकचन्द जी की, इन्दौर-राज्य में, उत्तम कारगुज़ारियों से प्रसन्न होकर, ९ नवम्बर १९०१ को, राजराजेश्वर सप्तम यडवर्ड ने उन्हें सी० आई० ई० की पदवी से सम्मानित किया। ईश्वर करै इन मानवर्द्धक चिन्हों को चिरकाल तक धारण करते हुए मुन्शी नानकचन्द जी और भी विशेष प्रतिष्ठा-सूचक पदक पाकर प्रसन्न होवैं!

मुन्शी नानकचन्द ने अभी, कुछ दिन हुए, एक बहुतही देशहितकारक काम किया है। वह काम इन्दौर राज्य में हिन्दी का प्रचार है, उनकी सलाह और कोशिश से वहां के मदरसों और दफ़्तरों में मराठी की जगह हिन्दी को स्थान दिये जाने का हुक्म हुआ है।

वराहमिहिर।

भारतवर्ष के ज्योतिषियों में वराहमिहिर सुप्रसिद्ध और सुप्रतिष्ठित ज्योतिषी हो चुके हैं। विद्यागौरव से उनको लोग आचार्य कहते थे। इसीलिए बहुत से ज्योतिषग्रन्थकारों ने उनको वराहमिहिराचार्य कहा है। वराहमिहिर वास्तव में आचार्य पद के योग्य थे। भगवती वीणा-पाणी सरस्वती के कृपापात्रों में जितने गुण होने चाहिएं, उनमें से बहुत से गुण वराहमिहिर में वर्तमान थे। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। वे ज्योतिष के पारदर्शी विद्वान् होने के सिवा काव्य, साहित्य आदि विषयों में भी अच्छा ज्ञान रखते थे। उनकी पद्यरचना प्रौढ़, सरस और भावपूर्ण होती थी, उस विषय में उनके बृहत्संहिता आदि महानिबन्ध संस्कृतसाहित्य के भण्डार में प्रकाशमान रत्न हैं। वराहमिहिर अपने पाण्डित्य से सर्वमान्य हुए हैं। ज्योतिष-ग्रन्थकारों ने उनका नाम बड़े गौरव से अपने ग्रन्थों में लिखा है। भास्कराचार्य, जो संसारभर में विख्यात-नाम हैं, अपने सिद्धान्तशिरोमणि नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थके आदि में इस प्रकार लिखते हैं-

'जयन्ति ललितोक्तयः प्रथिततन्त्रसद्युक्तयः
वराहमिहिरादयः समवलोक्य येषां कृतीः।
कृती भवति मादृशोऽप्यतनुतन्त्रबन्धेऽल्पधीः॥'

अर्थात् जिन्होंने अपनी मनोहर उक्तियों से शास्त्र

बनाने की युक्तियां फैलाई हैं वे वराहमिहिर ज्योतिःशास्त्र में सबसे अधिक मान्य हैं, जिनके ग्रन्थों को देखकर मेरासा अल्पबुद्धि मनुष्य भी महत्शास्त्र बनाने में प्रवृत्त होता है। वराहमिहिर के बाद भास्कराचार्य के समान सुकवि और ज्योतिःशास्त्रवेत्ता दूसरा कोई नहीं उत्पन्न हुआ। उनका इस प्रकार गौरव करना सामान्य बात नहीं है। वास्तव में वराहमिहिर और भास्कराचार्य दोनों पुण्यपुरुष उत्पन्न हुए थे, जिनकी विद्या बुद्धि से ज्योतिषविद्या का विज्ञान बहुत कुछ परिमार्जित और परिवर्द्धित हुआ है। कई आचार्य सुयोग्य हुए। उन्होंने ग्रन्थ बनाये और वे पठन-पाठन-योग्य भी हुए, तौभी वे ग्रन्थ प्रचलित नहीं हुए; वरन् ग्रन्थकर्ताओं के बादही सब नष्टप्राय होगये। इन बातों से मालूम होता है कि ईश्वर की दया बिना कीर्ति के साथ नाम संसार में नहीं स्थिर रहता। यों तो अपनी प्रवृत्ति के अनुसार प्रायः सभी सत्पुरुष उत्तम कार्य करने से नहीं चूकते, पर कृतकार्य कोई विरलाही होता है। वराहमिहिर और भास्कराचार्य के नाम, देशी किम्वा विदेशी समाज में, धन्यवाद के साथ आज तक लिये जाते हैं और इनके ग्रन्थों को लोग बड़े चाव से पढ़ते हैं।

वराहमिहिर शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे*। उनके पिता का नाम आदित्य दास था, और वे उज्जयिनी के निवासी थे। अपने पिता से ही ज्योतिषविद्या उन्होंने पढ़ी और कापित्थ नामक स्थान में सूर्यसे वर प्राप्त किया। यह सब वृहज्जातक के अन्तिमाध्यायके एक श्लोक से मालूम होता है। वह यों है—

आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः
कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसादः।
आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्य-
ग्घोरां वराहमिहिरो रुचिरां चकार ॥

इसका अभिप्राय ऊपर लिखा ही है। इसके सिवा वराहमिहिर ने अपने विषय में कहीं कुछ नहीं लिखा। वराहमिहिर का प्रथम ग्रन्थ पञ्चसिद्धान्तिका नामक है। उसमें ग्रन्थारम्भ का शक ४२७ अर्थात् ५०५ खृष्टाब्द, लिखा है। उक्त शक रोमकसिद्धान्त के अनुसार अहर्गण करने में लिखा है। डाक्तर भाऊदाजी का मत है कि रोमकसिद्धान्त की रीति से अहर्गण का गणित है, तो शक भी रोमकसिद्धान्त का लिखा है। और डाक्तर कर्न का मत है कि उक्त शक वराहमिहिर के जन्म का है। आलबीरुनी का मत है कि यह शक ग्रन्थारम्भ का ही है*। वास्तव में यही मत ठीक है। क्योंकि करण ग्रन्थों में ग्रन्थारम्भ का ही शक प्रथम लिखने की रीति परम्परा से प्रचलित है। हण्टर साहब ने जो उज्जयिनीनिवासी ज्योतिषियों का समयनिर्णय लिखा है उसमें ४२७ शक पञ्चसिद्धान्तिका काही स्थिर किया है† रोमकसिद्धान्त अथवा वराहमिहिर के जन्मका नहीं लिखा है। पञ्चसिद्धान्तिका की भूमिका में डाक्तर थीबो साहब ने उक्त लोगों के मतों का उल्लेख किया है और सबकी समीक्षा करके अपना मत यों प्रकट किया है—

"For the time of the composition of the Panchasiddhantika itself there would thus remain the period between 505 and 587 A. D. So that we shall probably be not far wrong in fixing it about the middle of the sixth century "‡

डाक्तर थीबो साहब का मत अभ्रान्त है। इस प्रकार निर्विवाद सिद्ध है कि वराहमिहिर पांचवीं सदी के उत्तर भाग में उत्पन्न हुए हैं। एक आमराज नामक टीकाकार के लिखने से डाक्तर भाऊदाजी ने सिद्ध किया है कि वराहमिहिर शक ५०९ में मृत हुए हैं। यह कहना केवल अटकल है; इसमें कोई प्रमाण नहीं है।

ज्योतिर्विदाभरण नामक एक ज्योतिष का ग्रन्थ है; उसके कर्ता कालिदास ज्योतिषी हैं। उक्त ग्रन्थ के अन्तिमाध्याय में बहुत सी इतिहास-सम्बन्धी बातें लिखी हैं। उस अध्याय का एक नवरत्न

* भट्टोत्पल के लेख से यह बात मालूम होती है।

* See Dr. Kern's Perface to the Brihat Samhita, P. 2-3.

† Cf. Colebrooke Algebra, P. XXXIII.

‡ Dr. G. Thibaut's introduction to the Fanchasiddhantika, P. XXX.

श्लोक है, जो जगत भर में; प्रायः छोटे से बड़े तक सभी पढ़े लिखे लोगों को याद है। वह यह है—

धन्वन्तरिः क्षपणकामरसिंहशंकु-
वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः।
ख्याता वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नवविक्रमस्य ॥

इसका अर्थ सरल है। वराहमिहिर के सम्बन्ध से इसको हमने यहां लिखा है। इसमें गिनाये हुए नवरत्न विक्रम की सभा में थे; ऐसा ग्रन्थकार का मत है। वास्तव में नवरत्न थे, या नहीं, इस विषय में अधिक लोगों का यही मत है, कि न थे। यही सत्य प्रतीत होता है। ज्योतिर्विदाभरण १३वीं सदी का बना हुआ है। अपने से पूर्व हज़ार वर्ष के क़रीब की बातें कैसे और कहां से इसमें लिखी गई हैं, इसका कुछ प्रमाण नहीं मिलता। धन्वन्तरि, क्षपणक, शङ्कु, वेताल, घटखर्पर इनके विषय में ठीक ठीक कुछ नहीं ज्ञात है। और कालिदास पांच हुए हैं, जिनमें प्रथमकालिदास रघुवंश, कुमारसम्भव और मेघदूत के कर्ता विक्रम की सभा में थे, जो समय ईसाके पूर्व ५७ वर्ष का है। बाक़ी चार कालिदासों में शाकुन्तल, विक्रमोर्वशी, मालविकाग्निमित्र और ऋतुसंहार बनानेवाले हैं। इसका निर्णय कठिन है कि किसने कौनसा ग्रन्थ बनाया। पर चारों ग्रन्थ एक कवि के नहीं हैं, यह ग्रन्थ देखने से साफ़ विदित होता है। और यह भी है, कि यदि एकही के सब ग्रन्थ होते तो पांच कालिदासों का नाम कैसे अब तक सुना जाता। इन पांचों से उक्त ज्योतिर्विदाभरणकार छठे सिद्ध होते हैं। डाक्तर कर्न ने वृहत्संहिता की भूमिका में कालिदास और वराहमिहिर को समकालिक लिखा है। सम्भव है कोई कालिदास छठी सदी में रहे हों; परन्तु, उस समय, प्रथम कालिदास यदि माने जायँ तो बड़ी भारी भूल है। अमरसिंह के समय में झगड़ा ही है; प्रायः सभी ने सन्दिग्ध लेख लिखे हैं। पर उक्त कालिदास ज्योतिषी उनको भी वराहमिहिर के समय के बेखटके लिखते हैं; यह अति विरुद्ध है। अमरसिंह एकही व्यक्ति हुए हैं; कालिदास की तरह पांच छ नहीं हुए। हमारे विचार से अमरसिंह खृष्टाब्द के पूर्व और पतञ्जलि के बाद उत्पन्न हुए हैं, इस विषय में एक श्लोक का एक टुकड़ा प्रसिद्ध है; वह यह है—

अमरसिंहो हि पापीयान् सर्वं भाष्यमचूचुरत्।

अर्थात् अमरसिंह बड़ा पापी है; उसने सारे महाभाष्य को चुरा लिया। अर्थात् अपने ग्रन्थ में भाष्य की कई पंक्तियां ज्यों की त्यों रखदीं। यह कहावत बहुत प्राचीन है, और वास्तव में अमरकोष में बहुत से व्याकरण के सूत्र ही श्लोकों में मिला दिये गये हैं। प्रोफ़ेसर गोल्डष्टुकर के मत से पतञ्जलि ईसा के १२० वर्ष पूर्व उत्पन्न हुए हैं। और डाक्तर भाण्डारकर के मत से ईसा के १५० वर्ष पूर्व उनका होना सिद्ध हुआ है *। अतएव 'नवरत्न' के श्लोक का क्या प्रमाण माना जाय? वास्तव में ज्योतिर्विदाभरण का अन्तिमाध्याय भर सब परस्पर असङ्गत बातों से भरा है, जो सर्वथा अनादर के योग्य है। इस विषय में विलसन साहब का मत है कि ५०० खृस्ताब्द में अमरसिंह वर्तमान थे। और जाकोबी के मत से ५०० में उक्त कोष चीनी भाषा में अनुवादित हुआ है। वेबर साहब इस विषय में कुछ न लिखकर भी लिखते हैं कि अमरकोष के सिवा सब कोष एकादश किम्वा द्वादश सदी के हैं। इन सब मतों के सत्यासत्य सम्बन्ध में क्या कहा जाय? तौभी पूर्वापर के विचार से मालूम होता है कि इसमें "गौराङ्ग उवाच" के सिवा कोई युक्ति नहीं है।

वृहत्संहिता की भूमिका में डाक्तर कर्न ने बुद्धगया के एक प्राचीन लेख का अनुवाद दिया है, जो विल्किन्स साहब का किया हुआ है। यह लेख बुद्धमन्दिर का है जिसको अमरदेव ने बनवाया था। यह अमरदेव ही अमरसिंह माना गया है और, वराहमिहिर का समकालिक बतलाया गया है। और ज्योतिर्विदाभरण के नवरत्न की सत्यता सिद्ध करके अन्त में डाक्तर कर्न ने लिखा है—

* See Dr. Bhandarkar's Early History of the Deccan, p. [illegible]

"It is at the same Budha Gaya that General Cunningham has found a corroboration of the tradition that Amar Singh was contemporary, or at all events nearly contemporary, with Varahamihir. The learned archaeologes shows that the Buddhist temple at Gaya, the remains of which he has surveyed, is the same as the one seen by Hiouen Thsang between 629-642 A. D. He shows further that the temple did not yet exist at the time of Ia-Hian's visit between 399 and 414 A. D., as the temple, according to the inscription before mentioned, was erected by Amar Deva, one of the nine gems at the court of Vikramaditya. He concludes that Amar Deva is the same with Amar Singh, the auther of the Amarkosh, and that the same Amar Singh must have lived between 400 and 600 A. D. Taking the mean, we get 600 A.D. which again coincides with what we should expect in regard to Varahamihir."*

वररुचि का समय निश्चित नहीं है। गोल्डष्टुकर के मत से वे पतञ्जलि के समसामयिक हैं। ग्रैार कावेल के मत से खृस्तकी प्रथम सदी † के पूर्व ग्रैार लासन के मत से प्रथम सदी का मध्य भाग है। डाक्टर भाण्डारकर 'नवरत्न' श्लोक के सहारे छठीं सदी का मध्यभाग सिद्ध करते हैं ‡। कुछ भी हो; यह स्पष्ट है कि 'नवरत्न' एक समय में किसी प्रकार नहीं सिद्ध हो सकते। मनुष्यों के विचार परस्पर भिन्न हुग्रा ही करते हैं, इसमें ग्राश्चर्य को बात नहीं है। "तुण्डे तुण्डे सरस्वती"। वराहमिहिर के सम्बन्ध से यहां यह सब लिखना कुछ ग्रयोग्य नहीं हो सकता।

ग्रब हम वराहमिहिर के ग्रन्थों के विषय में कुछ लिखना उचित समझते हैं। पञ्चसिद्धान्तिका, जिसका नाम हम पहले लिख ग्राये हैं, वराहमिहिर का प्रथम ग्रन्थ है। इसको पैालिश, रोमक, वशिष्ठ, सैार ग्रैार पैतामह इन पांच सिद्धान्तों का ग्राशय लेकर वराहमिहिर ने बनाया है। पांचों सिद्धान्तों में सैार, ग्रर्थात् सूर्यसिद्धान्त, को ग्रन्थकार ने उत्तम माना है। पांचों की व्यवस्था उन्होंने इस प्रकार लिखी है—

पैालिशकृतः स्फुटोऽसैा
तस्यासन्नस्तु रोमकः प्रोक्तः।
स्पष्टतरः सावित्रः
परिशेषैा दूरविभ्रष्टौ ॥

ग्रर्थात् पुलिशसिद्धान्त स्फुट है; ग्रतः कार्य में लाने योग्य है। रोमक सिद्धान्त भी कुछ ठीक है। सावित्र ग्रर्थात् सूर्यसिद्धान्त ग्रति शुद्ध है। शेष पैतामह ग्रर्थात् ब्रह्मसिद्धान्त ग्रैार वशिष्ठसिद्धान्त ग्रति ग्रशुद्ध हैं। वास्तव में ग्रार्षसिद्धान्तों में सूर्यसिद्धान्त ही सर्वप्रकार से सम्पूर्ण है। ब्रह्मसिद्धान्त कई उपलब्ध होते हैं, ग्रैार दुर्व्यवस्थित भी प्रतीत होते हैं। प्रायः बहुत से ब्रह्मसिद्धान्त ही को सब सिद्धान्तों का मूल मानते हैं। इस मानने में ब्रह्म शब्द ही कारण है, ग्रथवा ग्रैार कुछ, सो नहीं ज्ञात होता। ग्रैार, पञ्चाङ्ग भी इसीके ग्रनुसार कहीं कहीं बनता है। परन्तु इस रीति को छोड़ कर, सूर्यसिद्धान्त के मत से बनाना उचित है। यही ग्राज कल सर्वमान्य मार्ग है। क्योंकि जब वराहमिहिर के समय में ही ब्रह्मसिद्धान्त भ्रष्ट था, तब तो इतने दिनों बाद ग्रब उसकी भ्रष्टता का क्या ठिकाना है, यह सहज में ही समझ में ग्रा सकता है। परन्तु, हम देखते हैं, कि पञ्चाङ्ग के विषय में लोगों की दृष्टि बिलकुल नहीं है।

उक्त पञ्चसिद्धान्तिका ग्रन्थ समय के प्रभाव से लुप्त हो गया था। वह कहीं कहीं कठिनता से उपलब्ध होता था। कुछ दिन हुए डाक्टर थीबो साहब ग्रैार महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी ने उस को बड़े परिश्रम से शुद्ध करके प्रकाशित किया है। वह डाक्टर थीबो साहब के ग्रंग्रेज़ी ग्रनुवाद ग्रैार विस्तृत भूमिका, तथा पं० सुधाकर द्विवेदी कृत सटीक उपपत्ति के सहित है। भट्टोत्पल ने वराहमिहिर के प्रत्येक ग्रन्थों पर टीका बनाई है, पर इस ग्रन्थ की टीका नहीं प्राप्त हुई। इसी लिए द्विवेदी जी ने इतना परिश्रम किया है। वास्तव में द्विवेदी जी ने इतने कार्य किये, ग्रैार कर रहे हैं, कि जिनके लिए वे विशेष धन्यवादपात्र ग्रैार श्रद्धास्पद हैं।

* See Dr. Kern's Preface to the Brihat-Samhita, p. 19.

† Cowell's Prakrit Prakash, p. 2.

‡ Dr. Bhandarkar's Early History of the Deccan, p. 12.

वराह मिहिर का दूसरा ग्रन्थ वृहज्जातक है। इसका प्रचार भारतवर्ष के प्रायः सब प्रान्तों में है। इस पर भट्टोत्पल, महीधर और महादेव कृत टीकायें प्रसिद्ध हैं। उक्त टीकाओं में भट्टोत्पल कृत टीका सहित यह ग्रन्थ अधिक प्राप्त होता है। महीधर कृत टीका भी एक बार प्रसिद्ध हुई है; यह टीका सब टीकाओं से उत्तम और बालबोध है। एक दशाध्यायी नाम की किसी केरल देश वासी की भी इस पर टीका है। यह कम प्राप्त होती है; हमने उसे देखा है; उत्तम है।

वृहज्जातक के देखने से मालूम होता है कि वराहमिहिर फारसी भाषा भी जानते थे। क्योंकि इसमें मेष आदि राशियों की संज्ञा ग्रीक नामों के अनुसार है, जैसा उक्त ग्रन्थ के पहले अध्याय में है—

क्रिय, तावुरि, जितुम, कुलीर,
लेय, पाथोन, जूक, कौर्थाख्याः।
तौक्षिक, आकोकेरो,
हृद्रोगश्चान्त्यमं चेत्थम्॥

इसके सिवा और भी नाम लिखे हैं; पर वे राशियों के नहीं हैं। यथा—

केन्द्रात्परं पणफरं परतश्च सर्व-
मापोक्लिमं हिबुकमम्बुसुखं च वेश्म।
जामित्रमस्तभवनं सुतभं त्रिकोणं
मेषूरणं दशममत्र च कर्म विद्यात्॥

इन नामों के सिवा और भी नाम कहीं कहीं मिलते हैं; जैसे हरिज, द्रेष्काण इत्यादि। हरिज शब्द सूर्यसिद्धान्त में भी मिलता है—

मध्यलग्नसमे भानौ हरिजस्य न सम्भवः।

यहां हरिज शब्द का अर्थ क्षितिज है, जिस को अंग्रेजी में (Horizon) कहते हैं। Horizon हरिज का ही अपभ्रंश है। लेय और कौर्पि से अंग्रेजी में Les और Scorpio की उत्पत्ति है, जो सिंह और वृश्चिक राशि के नाम हैं। उक्त दोनों श्लोकों में जो नाम लिखे है उनका और दूसरे नामों का उल्लेख वेबर साहब ने अपने ग्रन्थ (History of Indian Literature) में किया है। वे इस प्रकार हैं—हिमृन, हेलि, आर, ज्यो, आस्फुजित्, कोण, होरा, केन्द्र, द्रेष्काण, लिप्ता, अनफा, सुनफा, दुरुधरा, केन्द्रद्रुम, वेशि, आपोक्लिम, पणफर, हिबुक, जामित्र, मेषूरण, घून वा घूत, रिःफ और त्रिकोण। इन नामों में कोण, होरा और त्रिकोण ये नाम हमारे यहां के ही हैं। भ्रम से ग्रीक नामों में लिखे हैं। उक्त नामों को लिखकर वेबर साहब कहते हैं कि "राशिचक्र सम्बन्धिज्ञान में जो हिन्दुओं में न्यूनता थी, वह ग्रीक ज्योतिषियों से दूर हुई है; बल्कि, एक प्रकार से, हिन्दुओं ने वैज्ञानिक रीति से ज्योतिष विद्या का अध्ययन भी उन्हीं लोगों से किया है"। यह लिखना भ्रममूलक है। हमारे आर्षसिद्धान्तों में राशिचक्र सम्बन्धी ही क्या, अन्यान्य कठिन और सूक्ष्म बातों का भी निश्चयात्मक लेख उपलब्ध होता है; प्रमाण देने की यहां विशेष ज़रूरत नहीं है। आर्यभट्ट भारतवासी ज्योतिषियों में सबसे प्राचीन हैं। उन्होंने अपने आर्यसिद्धान्त में भूभ्रमण सिद्ध करके दिखलाया है। इस विषय को आजकल के पाश्चात्य ज्योतिर्विद् मुक्तकण्ठ होकर स्वीकार करते हैं। ऐसी कई बातें विचारशील पुरुषों के सम्मुख हैं। वास्तव में हमारे यहां के आर्ष ग्रन्थों की लेखप्रणाली बड़ी दुरूह है। साफ अभिप्राय बिना पढ़े समझ में नहीं आता। इस दशा में जो बिना देखे ही किसी विषय का निर्णय करने को प्रस्तुत हो उसको क्या कहना चाहिये?

उक्त बातों के सिवा वृहत्संहिता में यवनों की फलित विद्या का उत्कर्ष लिखा है। यथा—

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु
सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते
किं पुनर्दैवविद्द्विजः॥

अर्थात् म्लेच्छ, जो यवन हैं, उनमें यह ज्योतिष विद्या भली भांति प्रचलित है। वे भी ऋषियों के

समान माने जाते हैं; तो, जो ब्राह्मण ज्योतिषी है वह अवश्य ही माननीय है। इससे भी सिद्ध है कि वराहमिहिर फारसी* में योग्यता रखते थे, और यवनों के सिद्धान्तों को भली भांति जानते थे। वास्तव में फलित और गणित दोनों ही विद्याओं की उन्नति यवनों में बहुत हुई है। बृहज्जातक में मणि, यवन, मणित्थ आदि यवन पण्डितों के नाम लिखे हैं; और उनके मत स्वीकार किये गये है। यवनों में यवनाचार्य या वृद्धयवन के नाम से एक बड़े माननीय विद्वान् हो चुके हैं। हमारे यहां के ताजिक ग्रन्थों में उनका नाम और उनके प्रमाण वाक्य बहुत मिलते हैं। यवनाचार्य का "यवन-जातक" मुख्य ग्रन्थ है। इसी को वृद्धयवन जातक भी कहते हैं। परन्तु जो दो चार स्थानों में एक छोटा यवनजातक प्रकाशित हुआ है वह असल यवनजातक नहीं हो सकता। वास्तव में उक्त जातक दुर्लभ है। हमने विलायत की "इण्डिया आफिस लाइब्रेरी" के सूचीपत्र में यवनजातक वा मीनराजजातक नामक ग्रन्थ का लेख देखा है। परन्तु यह निश्चय नहीं है कि यह वही यथार्थ यवनजातक है। तथापि कई बातों से यही बात सिद्ध होती है। उक्त सूचीपत्र में आदि के श्लोक भी दिये हैं।

"सृष्टेर्विधात्रे जगतां शिवाय
संहारकाले स्थितयेऽच्युताय।
तुभ्यं नमः सर्वगताय नित्यं
त्रयी मयायामलभास्कराय॥
यदुक्तवान्पूर्वमुनिस्तु शास्त्रं
होरामयं लक्ष्मितं मयाय।
तन्मीनराजो निपुणं स्वबुद्ध्या
विचिन्त्य चक्रेऽष्टसहस्रमात्रम्॥"†

इत्यादि १७ श्लोक हैं। मालूम होता है कि मीनराज यवनाचार्य के भी पहले कोई विद्वान हुआ है जिसने लक्ष्मित होरा शास्त्र को आठ हजार मात्र किया है। और उसीके ग्रन्थ का आशय लेकर यवनाचार्य ने अपना ग्रन्थ "यवनजातक" बनाया है और मीनराज के सम्बन्ध से शायद उसीका "मीनराजजातक" नामसे भी व्यवहार हुआ है। यह भी सम्भव है कि मीनराज ने ही अपने ग्रन्थ का नाम "मीनराजजातक" रक्खा हो, जिससे यह नाम चलता आया है।

उक्त दोनों श्लोकों में 'पूर्वमुनिः, कहने से यह नहीं जान पड़ता कि किससे अभिप्राय है। शायद सूर्य से अभिप्राय हो। क्योंकि मय को सूर्य के आराधन से ही सिद्धान्त का ज्ञान प्राप्त हुआ है। सम्भव है होरा के लिए भी उसने सूर्य का ही आराधन किया हो और उसे प्राप्त किया हो। यदि यह सत्य है तो मयासुर को ज्योतिःशास्त्र के सिद्धान्त और होरा इन दो भागों का आविर्भावक कहना चाहिए, क्योंकि मयासुर से ही परंपरागत, लोक में, यह सब प्रसिद्ध हुआ है। परन्तु बिना दृढ़ प्रमाण के इन सब बातों पर विश्वास नहीं होता। प्रायः बहुत सी बातें कहावतों से निकल निकल कर सत्यपक्ष में मिल जाती हैं।

वराहमिहिर का तीसराग्रन्थ लघुजातक है। यह भी भट्टोत्पल कृत टीका सहित है। जो बृहज्जातक में जातक सम्बन्धी और जन्मपत्र के फल की बातें लिखी हैं, उन्हींका इसमें संक्षेप से संग्रह है। हमारे यहां जन्मपत्र का बनाना और उसका फल कहना आर्ष तथा मानुष ग्रन्थानुसार है। आज कल जो वर्षपत्र की रीति चली है, वह यवन-मतानुसार है; और प्रायः उन्हींके समय से इसकी उत्पत्ति हुई है। आर्ष ग्रन्थों में, इस विषय में, कुछ भी नहीं लिखा है। हमारे यहां यवन राज्य के समय के बने ताजिक नीलकण्ठ, ताजिकसार और ताजिक-कौस्तुभ आदि जितने ग्रन्थ हैं वे सब यवनफलितानुसार हैं। प्राचीन आर्ष ग्रन्थों से इनका कुछ सम्बन्ध नहीं है।

*यवनों से यहां शायद ग्रीक लोगों से अभिप्राय है; तो क्या वराहमिहिर ग्रीक भाषा जानते थे? । सम्पादक।

† See Catalogue of the Library of the India Office, Part V., p. 1096.

इनका चौथा ग्रन्थ विवाहपटल और पांचवा योगयात्रा है। विवाहपटल बहुत कम उपलब्ध होता है। योगयात्रा * भट्टोत्पलकृत टीकासहित प्राप्त होती है। पर यह अभी कहीं प्रकाशित नहीं हुई है; ग्रन्थ बहुत उपादेय है।

वराहमिहिर का छठा ग्रन्थ समाससंहिता और सातवां बृहत्संहिता है। समाससंहिता आजतक कहीं किसीको नहीं प्राप्त हुई। भट्टोत्पल ने अपनी बृहत्संहिता की टीका में इस ग्रन्थ के बहुत से श्लोक जहां तहां प्रमाण में दिये हैं। इससे ज्ञात होता है कि बृहत्संहिता की रचना के पूर्व इसकी रचना हुई है। बृहत्संहिता वराहमिहिर का अन्तिम ग्रन्थ है। यह बहुत बड़ा है। इसकी रचना अति सरस और सरल है। ऐसी रचना करनेवाले भारतवर्ष के ज्योतिषियों में इनके सिवा भास्कराचार्य ही उत्पन्न हुए हैं। इसको डाक्तर कर्न ने प्रथम सन् १८६४ में बङ्गाल की एशियाटिक सोसायटी में मूलमात्र प्रकाशित किया था। उसके बहुत दिन बाद, कुछ दिन हुए, भट्टोत्पलविवृति सहित उसे महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी जी ने बड़ी उत्तमता और शुद्धता से छपवाया है।

बृहत्संहिता के सप्तर्षि-चार अध्याय में युधिष्ठिर का शक लिखा है। जैसा—

आसन् मघासु मुनयः शासति
पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्द्विक पञ्चद्वियुतः
शककालस्तस्य राज्ञश्च॥

अर्थात् युधिष्ठिर के राज्य समय में सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर थे; उस समय शक २५२६ था। सप्तर्षि एक नक्षत्र पर सौ बरस तक रहते हैं। जिस प्रकार सूर्य एक मास में एक राशि का भोग करता है, उसी प्रकार सप्तर्षिमण्डल २२५ वर्ष में एक राशि का भोग करते हैं। इस समय गणितद्वारा कृत्तिका नक्षत्र पर भोग सिद्ध होता है। इससे विदित होता है कि कलि के ६५७३ वर्ष पूर्व कुरुक्षेत्र में युद्ध हुआ था। युद्ध के बाद युधिष्ठिर ने कई वर्षों तक राज्य किया है। कलि को बीते, इस समय, ५००५ वर्ष हुए। इससे सिद्ध होता है कि युधिष्ठिर को हुए ग्यारह हज़ार वर्ष से भी अधिक काल हुआ।

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी।

* डाक्तर कर्न को सन्देह हुआ है कि बृहत और लघु के भेद से दो योगयात्रा हैं; परन्तु यह भ्रम है; योगयात्रा एकही है। जो पुस्तक उनको मिली है उसके विषय में वे लिखते हैं।

"It is uncertain that whether it be the Swalpa or the Brihat-yatra, as no indication of it can be found; the title of the work is yog-yatra (See his Preface to the Brihat-Samhita P. 26).

"मृत्युञ्जय"।

[१]

(काव्य प्रयोजन)

विपुल घोर उपद्रव मृत्यु के
अकथ शोक भरे करुनामयी
निरखि के भव बीच चहूं दिशा
विविध भाव हिये उपजें घने।

[२]

लिखन हेतु तिन्है कविरीति सों
कथन के हित काल-करालता
कछुक तत्व-विचारहु के लिये
सरुचि हाथ लई हम लेखनी।

[३]

(मृत्यु-सम्बोधन)

प्रतिनिधे खल काल कराल के!
कुटिल, क्रूर, भयानक, पातकी!
अति विलक्षण है तव दुष्क्रिया,
अशुच, मृत्यु अरे अधमाधम!

[४]

(मृत्यु के रूप)

कबहुँ आवत तू ज्वर वेष सों,
यकृत रोग बनै कबहूं तुही,
कबहुँ शूल, प्रमेह, विशूचिका,
रुधिर-चर्म-विकार अपार है।

[५]

कबहुँ श्वापद को वपुधारि कै,
बिस भरो कबहूं बनि कीट ही,

मगर वा कोउ ग्रैारहि जन्तु ह्वै
ग्रसत है जग जीव समूह तू ।

[६]

सलिल-मज्जन, बाढ़ नदीन की,
ग्रनल-दाह-विथा, पवि-पात हू,
पतन धामन को, विष-वेदना,
सकल सो जग में तव रूप हैं ।

[७]

समर-हिंसक-कर्म-प्रचंड जो,
कठिन धारहु जो ग्ररि-शस्त्र को,
विषय दण्ड, विपत्ति ग्रकाल की
सकल हैं तव दुष्कृति की कला ।

[८]

जगनिदान जिते, जब, ग्रै जहां,
तजत जीव ग्रहैं निजदेह को
तब तहां तिन जीवन को ग्ररे
उदर-बीच धरै ग्रति नीच तैं ।

[९]

(कठोरता)

करत घात ग्रचानक तू बुरी
पतित पै, सुकृती जन पै, तथा
तरुण-वृद्ध-विवेक करै नहीं;
ग्रति कठोर ग्ररे तव टेक है !

[१०]

(ग्रविचार)

कबहुँ दीन, न दीन, गनै नहीं,
गुन स्वरूप हु को न गुनै कछू,
लखत ग्रैासर है न ग्रनैासरै
खल महान विचार विहीन तू ।

[११]

जेहि दिशा जग दृष्टि पसारिये,
जेहि दिशा ग्रथवा श्रुति दीजिये,
तेहि दिशा तव शोक करी क्रिया
दृगन कानन लक्षित होत है ।

[१२]

(बाग़ की सैर)

करत सैर हुते कल बाग कों
तुरग-बाग गहे कर रेशमी
सुनि परै तिनकी ग्रब वारता
चल बसे तजि कै जग बाग सो ।

[१३]

(स्नान)

करत मज्जन सज्जन जो हुते
सुरसरी-तट ग्राज प्रभात ही
दिनप डूबत डूबत ही सुन्यो
ग्रमुक ग्रस्त भयो रवि ग्राज हो!

[१४]

(मुकुटधारी)

मुकुट-मण्डित वन्दित जो हुते
विदित भूपति-मण्डल-मण्डन
तनक में तिनको तृण दग्ध लैां
विटप जीवन खण्डित ह्वै गयो ।

[१५]

(रत्नमन्दिरनिवासी)

रतन मन्दिर मञ्जु ग्रमन्द में
रमत जैान निरन्तर ही रहे
दिवस ग्रन्तर में सोइ सोवहीं*
ग्रब भयंकर घोर मसान में ।

[१६]

(कोमल शय्या)

मखमली मृदु मञ्जुल तूल की
सुमन रञ्जित सेज बिहाय कै,
मृदुल ग्रङ्गन के लखिये परे
कठिन काठ चिता परजङ्क पै ।

[१७]

(गणिकानुरागी)

लखत रंग हुते गनिकान के
निस निरंतर जो जन जागि कै
उन लई निँदिया इमि काल की
मुदि गईं ग्रँखियां सब काल को ।

---

* सोइ, जो, सदृश शब्दों में, सो जो, को छन्द की आवश्यकता के अनुसार गुरु वा लघु पढ़ना चाहिये ; "सु" वा "जु" लिखना उचित नहीं प्रतीत होता ।

[१८]

(कलिकथानुरागी)

सुनत हे नितही रसतान जो
कलि-कथा जिन कान सुनी सदा
बधिर यौं अब काल कियो तिन्हैं
धुनि सुनात नहीं हरि नाम की।

[१९]

(रोकड़)

गिनत रोकड़ ते कल रात जो
बिधि मिलावन को सब द्यौस की
उठि प्रभात गये परलोक सो
जित हिसाब लगे गुन दोस को।

[२०]

(खजिया)

करन खेत चह्यो खजियार ने
दखल कालिहि कीन्ह जमीन पै
छुटि गयो तन आज छिनेक में
छिन गई खजिया इक जन्म की।

[२१]

(क्रोधी)

प्रकट रोस जनावत जो हुते
भ्रकुटि बङ्क चढ़ाय अतङ्क सों
कटि गई तिन की इक आन में
टकटकी सँग जीवन-रज्जुका।

[२२]

(शिशुसन्ताप)

कहुँ बिना जननी कछु मास के
शिशु पड़े तड़पैं पय पान को,
बिन पिता कहुँ बाल अनाथ ह्वै
करत रोदन "हा पितु" "हा पिता"!

[२३]

(पिता, जननी)

कहुँ पिता जननी सुत शोक सों
सिर धुनैं करुनामय रोय कै
"अधिक प्रानहु तें मम नन्दन!
बिकल छाँड़ि गये कित लाल हा"!

[२४]

(विधवा)

रुदन होत कहूं विधवान को
विपत रूप महा करुनामई
टुक सुने तिन की दुख की कथा
सहज हीय विदीरन होत है—

[२५]

"कित गये मम जीवन वल्लभ!
निरपराध गये कत त्यागि हा!
जियत मारि गये पति क्यों अहो!
अधम भाग! हरे प्रभु हा हरे!"

[२६]

यहि प्रकार चहूँ दिस लोक में
सुनु अरे खल हिंसक बापु रे
तुव प्रचंड उपद्रव घोर की
लखि परै उरभेदन वेदना।

[२७]

छिति परो कोउ मुर्छित शोक सों,
हनत पाहन है हिय पै कोऊ;
करत आरत नाद विषाद सों
कोउ पुकारत हा सिय राम हा!

[२८]

(समझाना)

सुजन जो समुझावन को जुरैं
विविध रीतिन सों समुझावहीं
समुझ होत नये दुख में नहीं
अधिक होत अधीर-अधीरता।

[२९]

प्रबल जानि कोऊ गति कर्म की,
सुमिरि कै अथवा भगवान को,
सहत संकट अंतस को सही
सहन शीलसहा अरु सिंधु सो।

[३०]

(पृथिवी सन्ताप)

यदपि दीन महीतल को सदा
रहत शीतल है अँग बाहरी
तदपि सन्तति रत्न वियोग सों
दुखित अन्तस तासु जरो करै।

[३१]

(समुद्र सन्ताप)

रतन-संतति-शोक पयोध को
न बिसरै निस बासर नेक हू

पर करै जग के सब काज़ सो
हृदय पीर गम्भीर भरे रहै ।

[३२]

नहिँ गुहा गहरी, उर घाव हैं,
नहिँ तरंग, उरस्थल कंप है,
हिय तपै, बड़वानल है नहीं,
जलधि को ग्रस धीरज धन्य है ।

[३३]

(वन)

नगर को तजिकै यदि जाइये
विपिन में, अथवा गिरि तुङ्ग पै,
तितहु देखि परैं तव कृत्य के
दुख भये परिनाम भयंकर ।

[३४]

(तितुली)

कहुँ लखी तितुली लतिकान में
तरल मञ्जुल-सुन्दरता-भरी
ग्रसन के हित आतुर ताहु पै
झपट चोट करी करचोटिया * ।

[३५]

(तीतर)

तुमल तीतर शोर कियो कहूं
मुदित भीतर जाति पतीर के
उतरि बाज भयानक तीर लैां
पकरि ताहि अचानक लै गयो ।

[३६]

(लवा)

सघन वृन्द सुछन्द लवान के
चुगत काकुन के कनके हुते
करन हेतु हलाल बहेलिया
पकरि जाल तिहैं घर लै गयो ।

[३७]

(पन्नग दंपती)

कहुँ लखे वर पन्नग दंपती
बिलसमान सुमञ्जुल दूब पै,
नकुल हाय तहां इक आय कै
जुगुल खंडन कै जुग तोड़ि गो ।

[३८]

(मृगा)

कहुं लख्यो हरनी गन में मृगा
शत-कलत्र-सोहाग-स्वरूप सो
बधिक ताहि बिना अपराध ही
तुपक सों बधि कै घर लै गयो ।

[३९]

(नीलगाय)

कहुं रहे गन नील गऊन के
चरत दूब हरी रस की भरी
तड़ित वे सम नाहर टूटि कै
त्वरित घायल कै इक लै गयो ।

[४०]

(चीतल, साँभर)

चरत चीतल चेत बिना कहूं
भ्रमत साँभर भीर ससंभ्रम,
तनक में तकि औसर तेंदुआ
दल बिदारि बिदा इक लै गयो ।

[४१]

(मधुमक्षिका)

दस सहस्र बसैं मधुमक्षिका
सघन पादप पै मधु कोश में
सबन को खल भालु निचोड़ि कै
टुघुट घुट्ट सबै मधु पी गयो ।

[४२]

(शुकशावक)

कहुँ लख्यो शुकशावक चाव सों
सबद सुन्दर सुन्दर बोलतो
तेहि बिडाल दबे पग डाल पै
दपटि दंतन लीन दबाय कै

[४३]

(भ्रमर)

मुदित भृङ्ग कहूँ मकरन्द पी
कमल संपुट में पटुता भुलै,
मग तकै जब लैां दिन राज की
कवल कञ्जहि कुञ्जर कै गयो ।

[४४]

(हस्ती)

समद सिन्धुर जो शिर शुंड सों
करत खण्डित तुङ्ग वसुन्धरा

---

* एक काले रङ्ग का पक्षी ।

तिनहि मारत कुम्भन फारि कै
सुबल-सिंधु भयङ्कर केसरी।

[४५]

(सिंह)

उठत कम्प हुते गिरि कन्दरा
सुनत जासु भयङ्कर हङ्क को
भटकि मारग में मृग व्याध की
मरि गिरो मृग तुल्य मृगेन्द्र सो।

[४६]

(बनाग्नि)

विपिन पावक जो प्रकटै कहं
ज्वलित जन्तुन जाल करै खाऊ
कहुँ दुरे उबरैं, न भगे बचैं
वन कुरङ्ग, भुजङ्ग, विहङ्ग हू।

[असमाप्त ।

राय देवीप्रसाद।

तुम हमारे कौन हो ?

[सरकारी हिन्दी में लिखा गया है]

तुम हमारे कौन हो ? रोज़ सुबह के वक्त चारों दिशाओं में अपनी हज़ारों किरणें फैला कर तुम हमारे पास आते हो, और सांझ होते ही अँधेरे में अपना मुँह छिपा लिया करते हो। बताओ तुम्हारा क्या नाम है, और तुम हमारे कौन हो ? तुम्हारे साथ हम लोगों का ऐसा कौन गहरा नाता है, कि तुम्हारी सूरत देखते ही दुनिया हँसने लगती है। मर्द, औरत, चिड़ियां, चौपाये, सब तुम्हें देखते ही खुश हो कर अपने अपने कामों में लग जाते हैं, और तुम्हारे चले जाते ही दुनिया भर का चेहरा उदासी से उतर जाता है; सब लोग अपना कारोबार छोड़ देते हैं और नींद में गड़प हो जाते हैं ! गरमी से चाहे जान निकलती हो, पर तौ भी बिदून तुम्हारे काम नहीं चलता। बताओ तो सही इसके मानी क्या हैं ?

मेरा नाम सूर्य्य है। मेरे और भी नाम हैं—दिनकर, दिवाकर, प्रभाकर, रवि, भानु, आदित्य, अंशुमाली, वगैरः-पर सरकारी नाम मेरा सूरज है। लड़के सूर्य्य कहेंगे तो इम्तहान में नालायक़ गिने जायँगे। पर मुझे इससे क्या ? इनके सिवा मेरे और भी कितने ही नाम हैं। और और क़ौम के लोग मुझे उन्हीं नामों से पुकारते हैं। पहिले लोग मुझे देवता जान कर मेरी पूजा करते थे; अब भी तुम्हारे हिन्दोस्तान में हज़ारों आदमी मेरी पूजा करते हैं; संस्कृत भाखा में मेरी अस्तुत करते हैं; मुझे नमस्कार करते हैं। पर मैं जानता हूं मैं कौन हूं; मैं जानता हूं मैं देवता नहीं हूं। मेरी क्या ताक़त कि मैं भगवान के आसन का दावा करूँ। उन्होंने जो यह सारा सामान रच रक्खा है (जिसे तुम लोग पण्डितऊ हिन्दी में ब्रह्माण्ड कहते हो) उसका न ओर है न छोर। ऐसे बेहद बे-हिसाब ब्रह्माण्ड के सामने मेरी गिनती बालू की एक कनी से भी छोटी है; मेरे से सैकड़ों करोड़ों सूरज इस आसमान में रात दिन घूम रहे हैं; उनमें से बहुत से ऐसे भी हैं जो मुझसे भी कहीं बड़े हैं। तुम्हारी इस दुनिया का घेरा सिर्फ़ पचीस तीस हज़ार कोस है। इतने ही में तुम लोगों के ग़रूर का ठिकाना नहीं। मुझे तोड़ कर तुम्हारी दुनिया के बराबर जो बारह लाख पचीस हज़ार दुनिया गढ़ी जावें, तिस पर भी, जो थोड़ा बहुत माल मसाला बचा खुचा रह जावेगा उनसे ४३ दुनिया और भी बन सकेंगी। मैं इतना बड़ा हूं ! मुझसे भी बड़े बड़े और कितने ही सूरज हैं। उन सबकें साथ साथ तुम्हारी दुनिया और चाँद के बराबर कई सितारे (जिन्हें पण्डित लोग ग्रह और उपग्रह कहते हैं) रहते हैं। वे इन सितारों को साथ लेकर इस बे-ओर-छोर वाले आसमान के मैदान में टहलते रहते हैं। भला कुछ ठिकाना है ! ज़रा सोचो तो सही कि यह कैसी बात है ! इसके सामने मुझ बेचारे की क्या हैसियत ? तुम्हारी दुनिया तो किसी गिनती ही में नहीं।

ख़ैर, मैं तुम्हारा कौन हूं अब तुम्हें बतलाता हूं। तुम्हारी दुनिया मेरे ही बदन का एक हिस्सा है। इनसान ने दूरबीन नाम की एक कल बनाई है। उस कल में से देखने से सब सितारों के बीचो बीच सफ़ेद सी, एक चीज़, देख पड़ती है। ज्योतिषी लोग उसे अंगरेज़ी में नेबुला कहते हैं। तुम चाहे उसे बाष्पपुञ्ज कह लो। सरकार की चलाई हुई हिन्दुस्तानी ज़बान में देखें उसे क्या कहते हैं। [चाहे जो कहें, संस्कृत या फ़ारसी या अरबी, इनमें से किसीकी मदद ज़रूर लेनी पड़ेगी। शायद संस्कृत ही को कालेपानी का हुक्म होगा]। पर तुम लोग सरकार अंगरेज़ की रियाया हो, तुम्हें इन झगड़ों से क्या काम। तुम भी उन धब्बों को नेबुला ही कहो तो अच्छा। ये नेबुला ठोस चीज़ों के बहुत छोटे छोटे हिस्से हैं। संस्कृतवाले इन्हें जड़ परमाणु कहते हैं। बहुत गरमी से पिघल कर वे धुयें या भाफ की सूरत में हो गये हैं। पहले पहल,—सैकड़ों करोड़ों बरस पहले,—मेरी भी वैसी ही हालत थी। मैं भी एक भारी नेबुला का ढेर था। तब तुम्हारी दुनिया का कहीं पता तक नहीं था; न तब चाँद ही था। धीरे धीरे गरमी घट जाने से वह भाफ जमने लगी है। पर गरमी की तेज़ी से कभी कभी मुझमें से बहुत से टुकड़े टूट कर अलग करोड़ों कोस की दूरी पर जा गिरे हैं और उनकी गरमी घट जाने से उनका ऊपरी हिस्सा जम कर कड़ा हो गया है। पर उनकी वह सब गरमी अभी चुक नहीं गई है। मैं हमेशा पच्छिम से पूरब की तरफ़ घूमा करता हूं। इसी लिये उन टुकड़ों ने भी वही चाल पकड़ी है। सिर्फ़ यही नहीं। वे मुझे बिलकुल छोड़ नहीं सके हैं; छोड़ने से भला उनका काम चल सकता है? मैं भी उन्हें छोड़ जाने नहीं देता; ज़ोर से उन्हें मैं अपनी ओर खींचे रहता हूं। तुम्हारी दुनिया भी उन्हींमें से एक है। अब तक तुम्हारी दुनिया में ज्वालामुखी पहाड़ों का आग उगलना, भूचाल, गरम सोते वग़ैरह, उसी गरमी की गवाही दे रहे हैं। पर उसके ऊपर का हिस्सा बहुत कुछ ठंढा हो गया है, इसी-से तुम लोग उस पर रह सकते हो।

अजी, मैं न होता तो तुम लोग भी न जीते। मेरे ही लिये तुम लोग जी रहे हो। मैंने तो पहले ही कह दिया है कि तुम्हारी दुनिया की गरमी घट रही है। मैं न रहता तो उसकी सब आग बुझ कर वह इतनी ठंढी हो जाती कि उस पर कोई जानवर न रह सकता; किसी तरह की पेड़ पत्ती तक न उग सकती। मेरी गरमी, मेरा उजियाला, न होता तो अनाज का एक दाना भी देखने को न मिलता। गरमी के दिनों में जब तुम लोग अच्छे अच्छे मालदा, बम्बई वग़ैरह मोठे मीठे आम खाते हो, क्या तब मेरी बात कभी याद आती है? जब ख़रबूज़े, तरबूज़, लीची या दूधिये नारियल उड़ाते हो, उस वक़्त क्या एक दफ़ः भी यह बात तुम्हारे ध्यान में आती है, कि मैं हूं, इसीसे तुम इन लज़ीज़ फलों पर हाथ फेरते हो?

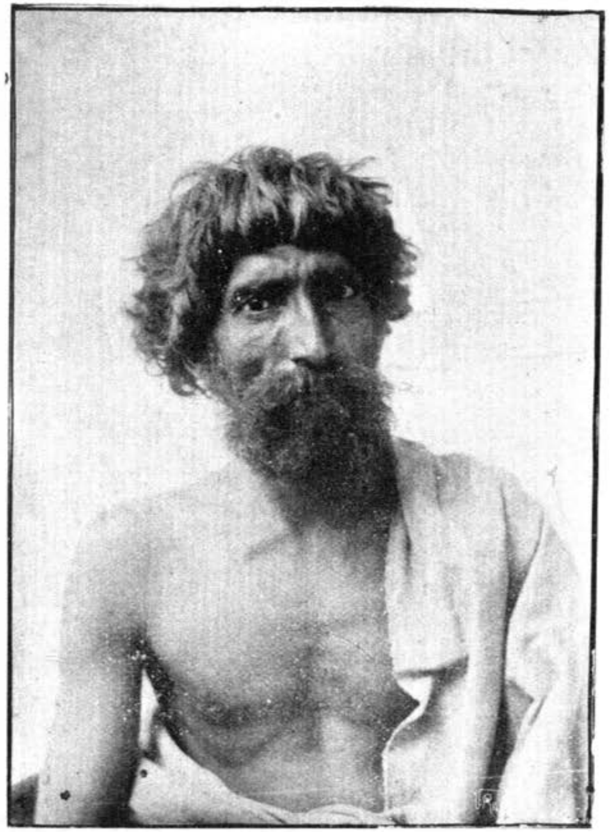
गरमियों में जब जलती हुई लूयें चला करती हैं, तब शायद मन ही मन—मन ही मन क्यों खुल्लम खुल्ला भी—तुम लोग मुझे गालियां दिया करते हो, मेरे ऊपर कितनी ख़फ़गी दिखलाते हो। पर जब रात को खिलती हुई चाँदनी में गंगा किनारे, दस पांच चार दोस्त, एक साथ मिलकर, ठंढी ठंढी हवा में दिल बहलाते हो; या हवा के झोके से पेड़ों पर पत्तियों की सरसराहट या गंगा में उठती हुई लहरों की कलकलाहट को सुनकर जब तुम ख़ुश होते हो; या जब उन लहरों पर चांद की हंसती हुई परछांई खेला करती है; जब सारी नदी हीरे मोतियों से जड़ी हुई रुपहली चादर सी जँचने लगती है; जब चांदनी में तुम्हारे चारो तरफ़ सब चीज़ें झकाझक देख पड़ती हैं; जब इन सबों को देखकर तुम्हारे दिल की चांदनी उमड़ आती है,—क्या उस वक़्त एक बार भी तुम सोचते हो कि, मैं हूं, इसीसे वह नदी तुम्हारे सामने बहती है; मैं हूं इसीसे वह हवा चलती है; मेरी ही रोशनी से चांद की चांदनी

है ? मुझ ही से भीख मांगी हुई चांदनी की तुम्हारे शायर लोग इतनी तारीफ़ करते हैं ; भीख में पाई दैालत ही को देखकर उन लोगों ने चांद का इतना घमण्ड बढ़ा दिया है। जाओ, आदमी बड़े नमकहराम हैं। मैं तो उनके लिये दिनरात मेहनत करके मरूं और वे एक बार भी मेरा यहसान न मानें ! चांद की तारीफ़ में कितनी शायरी ! कितनी कविता !! कितने अश्लोक !!! चांद की इतनी वाहियात खुशामद ! कवीश्वर लोग सब पागल हैं ! क्यों ? क्या मैं यें ही किसी कूड़ेखाने में मुफ़्त का पड़ा मिल गया हूं ? चांद बहुत दिनों में, ठहर ठहर कर, तुम लोगों से आकर मिलता है। क्या इसीसे तुम उसकी इतनी ख़ातिरदारी करते हो ? और मैं रोज़ आया जाया करता हूं, इस लिये मैं पुराना हो गया ? अच्छा इनसाफ़ है ! पर तुम लोगों से भ[illegible] कोई और क्या ज़्यादः उम्मीद कर सकता है। जिसने तुम्हें जिस्म, जान, सब कुछ दिया; जिसने सारे जहान को रचा ; जिसने सैकड़ों तरह से तुम्हें खुश रक्खा; जो तुम लोगों को इतना चाहता है; उसको तुम दिन रात में एक बार भी याद नहीं करते—मैं तो ठहरा सिर्फ़ मिट्टी का एक ढेर (जड़पिण्ड)। मैं प्यार करने नहीं जानता ; दिनरात सिर्फ़ मेहनत ही किया करता हूं। फिर मैं क्योंकर यह उम्मीद करूं कि तुम मेरी भी कभी याद करोगे ?

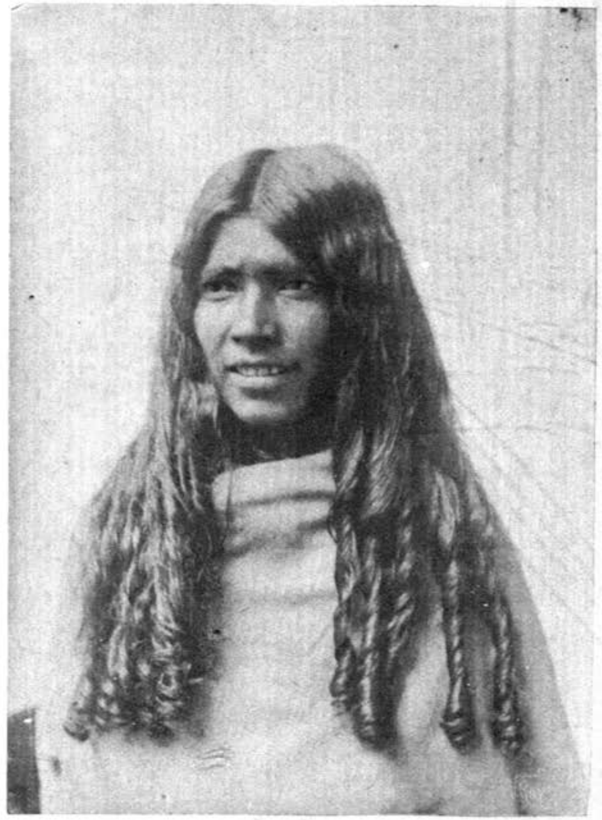
तुम लोग समझते होगे कि मैं चांद से डाह कर रहा हूं। मुतलक़ नहीं। तुम उसकी चाहे जितनी तारीफ़ क्यों न करो, उससे मेरी ही नामवरी होगी ; मेरी बदनामी कुछ भी नहीं। तुम्हारी दुनिया के बराबर चांद भी मेरा ही एक टुकड़ा है; मेरी ही रोशनी से वह ऐसा भला देख पड़ता है। मैं उससे क्यों डाह करने लगा ? पर, हां, मुझसे इतना फ़ायदा उठाकर तुम लोग मेरी एक भी बात नहीं सोचते; इसीसे जी में आता है कि तुम लोग बड़े नमकहराम हो; बड़े ही नाशुकरे हो। पहले दिनों में लोग मेरी पूजा करते थे। और अब तुम लोगों ने मुझसे नाता तक उठा लिया ! अफ़सोस !

अपने मुँह आप मियां मिट्ठू बनना ठीक नहीं है ; और फिर, तुम लोग ऐसे भले आदमी हो कि तुमसे बात कहने को जी ही नहीं चाहता ; अभी कहने लगोगे कि मैं अपनी तारीफ़ कराने के लिये बढ़ा चढ़ा कर बातें बना रहा हूं। पर तुम्हींने पूछा है कि मैं तुम्हारा कैान हूं, और बात जब मैं ने छेड़ ही दी है तब उसे सब कह डालना ही चाहिए। इसीसे मुझे जो कुछ कहना है मैं कहता हूं; तुम्हारे जी में जैसा आवे वैसा ही समझ लेना। एक बात और कहता हूं। मैं पहिले ही कह चुका हूं; कि इस भारी ब्रहमाण्ड में मैं बालू की नोकसे भी नाचीज़ हूं; अगर मुझमें कुछ ताक़त हो तो वह भगवान की दी हुई है ; तब फिर मुझे किस बात की शेख़ी ? तारीफ़ मेरी क़िस्मत में कहां ? अगर मुझमें कोई हुनर हो तो उससे मेरे मालिक ही की बड़ाई होगी, मेरी नहीं ! अच्छा, मेरी और मेरे मालिक की बड़ाई रहने दीजिए, मैं जब आप ही लोगों की ख़िदमत के लिये मुक़र्रर हुआ हूं, तो लो, मैं आपही की तारीफ़ करता हूं—मैं हूं आप का नैाकर। बिना कैाड़ी पैसा लिये मैं आप लोगों का पंखाक़ुली हूं, आप लोगों का भिश्ती या पानीपांड़े हूं। मेरी बात समझ में नहीं आई ? अच्छा समझा कर कहता हूं।

मैं तब कह रहा था कि मेरी ही करामात से नदी बहती है; मेरी ही चलाई हवा भी चलती है। मैंने ऐसा क्यों कहा ? गरमियों में जब तुम लोग सोचते हो कि दुनिया धूप से जल रही है, उस वक्त मैं तुम्हारे लिये पानी और हवा इकट्ठा करता हूं। जब कभी किसीके मकान में आग लगती है, तब तुम लोगों ने देखा होगा कि चारो तरफ़ हवा चलने लगती है। ऐसा क्यों होता है सो जानते हो ? सुनो ; जहां आग लगती है वहां की हवा आग की गरमी से पतली और हलकी होकर ऊपर को चढ़ जाती है। और उस हवा की ख़ाली जगह



टोडा मर्द



टोडा औरत



टोडाओं के देवमन्दिर

में आसपास की ठंढी और घनी हवा भर जाती है। गरमियों में मैं तुम्हारे इस हिन्दुस्तान को बहुत तपा देता हूं, तब वहां की हवा हलकी होकर आसमान में चढ़ जाती है और उसकी ख़ाली जगह भरने के लिये दक्खिनी समन्दर से ठंढी हवा हिन्दुस्तान की तरफ़ बहने लगती है। उस हवा को पाकर तुम्हें कैसा आराम मिलता है। तौभी तुम एक बार भी यह नहीं क़बूल करते कि वह हवा मैं तुम्हें ला देता हूं। तुम्हारे हिन्दुस्तान ही में नहीं, सब मुल्कों में, सब समन्दरों में, मेरे ही सबब से हवा चला करती है। इससे तुम्हारे बनिज बैपार को फ़ायदा पहुंचता है; जहाज़ सब मुल्कों से तुम्हारे लिए आराम की चीज़ें ले आते हैं; हवा न होती तो जहाज़ न चलते।

और, देखो, मेरी ही गरमी से समन्दर का पानी भाफ बन कर हवा में मिल जाता है और जब समन्दर से हवा ज़मीन की ओर बहती है तब वह भाफ भी, गो कि दिखाई नहीं पड़ती, ज़मीन पर आती है। यह भाफ ही मेह, ओस कुहरा और ओला बन कर ज़मीन पर गिरती है और ठंढक पहुंचा कर उसे उपजाऊ बनाती है। हिमालय के बर्फ़ से गंगा निकली है। वह बर्फ़ भी इसी भाफ से बनती है। मेह का पानी, जो मिट्टी पत्थर वग़ैरह में घुस कर, फौवारे की सूरत में, साल भर तक, नदियों को भरता है, वह भी इसी भाफ से बनता है। सिर्फ़ यही नहीं, बदन पर कपड़ों की तरह यह भाफ दुनिया को जाड़े और गरमी की ज़ियादती से बचाता है। भाफ का कपड़ा न रहता तो दिन में मेरे किरनों की गरमी तुम लोगों से कभी बरदाश्त न होती, रात में दुनिया की गरमी जल्द निकल जाती, और सब जगह बरफ़ जम जाती। भाफ न होता तो बादल भी न होते, न मेह बरसता, नदियां सब सूख जातीं, और सारी दुनिया जानदारों के रहने क़ाबिल न रहती।

अब तुम लोगों ने समझा मैं तुम्हारा कौन हूं? दिन भर बक बक कर के मैंने तुमसे अपना हाल कहा; अब साँझ हो आई, मुझे भी अब इस दुनिया की दूसरी तरफ़ उजियाला पहुंचाना है। तुम लोग तो अभी थोड़ी देर में आराम करोगे, मुझे आराम मयस्सर नहीं। इसलिये मैं जाता हूं। राम राम!*

पार्वतीनन्दन।

रेडियम।

योरप में विज्ञान की प्रति दिन अधिकाधिक उन्नति होती जाती है। ज्योतिष शास्त्र, रसायन शास्त्र, पदार्थविज्ञान शास्त्र, सब में विलक्षण विलक्षण बातों का पता लगता जाता है। जैसे जैसे मनुष्य की सज्ञानता बढ़ती है वैसे ही वैसे उसकी शोधक बुद्धि भी बढ़ती जाती है। कोई ८ वर्ष हुए राण्टेन साहब ने कुछ ऐसी विस्मय-कारक किरणों का पता लगाया, कि उनके द्वारा सारे अपारदर्शक जड़ पदार्थ पारदर्शक तुल्य हो गये। उन्होंने लकड़ी, कोयला, धातु आदि के भीतर मनुष्य की दृष्टि पहुँचा दी। इन किरणों की सहायता से शरीर की हड्डियां देख पड़ने लगीं और डाकृर लोग शरीर से विकृत पदार्थों को देखकर निकाल देने लगे। यह कितनी विलक्षण बात है! कैसा आश्चर्य्यजनक आविष्कार है! सन्दूक़ के भीतर आप रुपये, ज़ेवर, कपड़े लत्ते रखकर ताला लगा दीजिए। इन किरणों का प्रयोग करते ही वे सब चीज़ें बाहर रक्खी हुई सी देख पड़ने लगेंगी! राण्टेन साहब ने इन किरणों—रश्मियों—का पता लगाया। इसलिए ये रश्मियां उन्हीं के नाम से "राण्टेन-रश्मि" कहलाती हैं। राण्टेन साहब ने पदार्थों के व्यवधान, अर्थात् आवरण, को तुच्छ कर दिया।

जितने पदार्थ हैं सब परमाणुओं से बने हैं। इन परमाणुओं को अभी तक हमलोग अविभाज्य समझते थे। परन्तु अब पाश्चात्य विज्ञानियों ने

* बामाबोधनी पत्रिका के एक लेख का भाषानुवाद।

सिद्ध किया है कि ये परमाणु उनकी अपेक्षा भी बहुत छोटे परमाणुओं के मेल से बने हैं। इन अत्यन्त छोटे परमाणुओं का नाम यलेक्ट्रान है। अध्यापक बेकेरल ने पहले पहल इस बात का पता लगाया कि यूरेनियम नामक धातु से प्रकाश बाहर निकलता है; और वह प्रकाश इन यलेक्ट्रान नामधारी परमाणुओं के प्रवाह से उत्पन्न होता है। यह परमाणु-प्रवाह यूरेनियम से सदैव निकला करता है। जब से यूरेनियम के इस अद्भुत गुण का पता लगा तब से विज्ञानियों ने इस बात की खोज आरम्भ की कि क्या और भी इस प्रकार की कोई धातु है जिससे प्रकाश-प्रवाह बहा करता हो? इस खोज का फल बड़ाही विस्मयोत्पादक हुआ। फ़्रांस के विज्ञानी अध्यापक करी और उनकी मेम ने एक ऐसी धातु का पता लगाया जिससे प्रकाश की महा विलक्षण धारा सतत निकला करती है। इस अद्भुत धातु का नाम रेडियम है। जब से इस का पता लगा तब से विज्ञान-विश्व में हलचल मच गई है। इसके अलौकिक गुणों ने बड़े बड़े विज्ञानियों को अचम्भे में डाल दिया है। वे अनेक प्रकार से इसकी परीक्षा कर रहे हैं; और इसके नये नये चमत्कारिक गुणों का ज्ञान प्राप्त करके विस्मित हो रहे हैं।

रेडियम अमूल्य, किम्वा महामूल्य, धातु है। वह एकही खनिज (Pitch blende) से प्राप्त होती है। उसे प्राप्त करने में बहुत कष्ट उठाना पड़ता है; और साथ ही अपार द्रव्य भी ख़र्च होता है। इतना करके भी उसकी कितनी मात्रा मिलती है? बहुत ही थोड़ी। इतनी थोड़ी कि एक ग्रेन का दाम ५०० रुपये तक पड़ता है। यदि कोई एक रत्ती रेडियम ले तो उसे ५,००० रुपये देना पड़ें! इस हिसाब से एक माशे का दाम चालीस हज़ार और एक तोले का कुछ कम पांच लाख हुआ!!! इतने पर भी यह धातु शुद्ध शुद्ध अभी तक मिली ही नहीं। जो मिली है उसमें या तो ब्रोमिन मिश्रित है, या क्लोरिन। इसके आविष्कर्ता अध्यापक करी के पास जो थोड़ी सी रेडियम है वह क्लोरिन मिली हुई है।

रेडियम का सबसे प्रधान गुण यह है कि उससे अविरत उष्णता बाहर निकला करती है। अभी तक लोग समझते थे कि बिना किसी रसायनिक क्रिया अथवा परस्पर संघर्षण के उष्णता उत्पन्न नहीं हो सकती; परन्तु रेडियम ने इस सिद्धान्त पर हरताल लगा दिया। इसमें ऐसी विलक्षण उष्णता है कि वह कम होती ही नहीं। इसके आसपास के पदार्थों का उष्णतामान जितना होता है उससे इसका मान सदैव अधिक रहता है। और पदार्थों की जाने दीजिए, यदि इसे बर्फ़ में गाड़ दें तो भी इसकी उष्णता कम नहीं होती; हां, बर्फ़ अवश्य उसकी उष्णता से गल जाता है। थोड़ी सी उष्णता और प्रकाश के लिए हम लोगों को कितनी लकड़ी, कितनी बिजुली; कितना गैस, कितना कोयला और कितना तेल ख़र्च करना पड़ता है। यदि रेडियम सुलभ हो जाय तो मानव-जाति को उससे अपार लाभ पहुंचै।

अभी तक विद्वानों की यह भावना थी कि जड़ पदार्थों का विश्लेषण नहीं होता। परन्तु रेडियम ने अब इसमें सन्देह उत्पन्न कर दिया है। रेडियम के एक परमाणु में कोई १५,००० यलेक्ट्रान होते हैं। ये यलेक्ट्रान रेडियम से अनवरत बाहर निकला करते हैं। इसी बाहर निकलने—इसी प्रवाह—से उष्णता और प्रकाश की उत्पत्ति होती है। यद्यपि इस धातु से सूक्ष्म परमाणुओं का प्रवाह सतत निकला करता है तथापि इसका ह्रास बहुत ही कम होता है। यह कहना चाहिए कि इसका ह्रास ही नहीं होता, क्योंकि १०० वर्ष में यदि एक रत्ती रेडियम का $\frac{१}{२०००}$ हिस्सा क्षय हुआ तो कितना हुआ? वह न कुछ के बराबर है।

रेडियम धातु अनेक विलक्षणताओं का घर है। उसमें एक यह भी विलक्षणता है कि उसे जितना अधिक ठंढा करते हैं उतना ही अधिक उष्णता उससे निकलती है! और एक बात यह भी है, कि

जब यह नई होती है तब इसमें उष्णता की मात्रा कम रहती है; परन्तु जैसे जैसे यह पुरानी होती जाती है तैसे तैसे उष्णता का गुण इसमें बढ़ता जाता है।

रेडियम स्वतःसिद्ध प्रकाशमान पदार्थ है। उसका एक कण अँधेरे में रखने से इतना प्रकाश होता है कि छोटे से छोटे टाइप की किताब पढ़ी जा सकती है। यदि उसे एक काले काग़ज़ या कपड़े में लपेट कर किसी अन्धे के सामने कोई ले जावे तो उस अन्धे को भी उस प्रकाश का ज्ञान तत्क्षण हो जाता है। रेडियम एक ऐसा तेजोविकिरक पदार्थ है कि यदि जस्त के सल्फाइड की पुट किसी परदे पर देकर रेडियम को परदे के पास ले जावें, और सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से देखें, तो यह जान पड़ता है, कि अनन्त तेजोमय परमाणु परदे पर गिर गिर कर बुझते जाते हैं। इन्हीं तेजस्क परमाणुओं को यलेक्ट्रान कहते हैं। इस परीक्षा के लिए रेडियम को खोलकर परदे के पास नहीं ले जाना पड़ता। उसे काँच की नली या डिबिया में कुछ दूर रखना पड़ता है। परन्तु डिबिया या नली को छेदकर रेडियम के परमाणु बाहर निकल जाते हैं। इस विलक्षणता का कहीं ठिकाना है!

रेडियम बड़ी ही तेजःपुञ्ज धातु है। विद्वानों का मत है कि सूर्य में जो प्रकाश और जो उष्णता है वह उसीके पिण्ड-सम्भूत परमाणुओं की है। और जिस पदार्थ के परमाणुओं का क्षय होगा, चाहे वह जितना कम हो, किसी न किसी दिन उसका नाश अवश्य होगा। इस हिसाब से सूर्य का नाश एक दिन होने वाला है। यदि सूर्य के पिण्ड का नाश न भी हुआ तो उसके प्रकाश और ताप का नाश अवश्य ही होगा। ऐसा होने से इस विस्तृत विश्व के जीवधारी भी इन दो पदार्थों के न रहने से प्रलय को प्राप्त हो जायँगे। परन्तु रेडियम ने इस प्रलय-सम्बन्धी डर को बहुत कम कर दिया है। जिस परिमाण से इस धातु का क्षय होता है, यदि उसी परिमाण से सूर्य का क्षय हुआ, तो उसके नाश होने का जो समय विज्ञान-विशारदों ने अनुमान किया था उससे वह कमसे कम चालीस गुना अधिक बढ़ गया है! चलो, यह बहुत अच्छा हुआ; पाश्चात्य पण्डितों को इस हृदयकम्पकारी विचार से कुछ दिन के लिए फ़ुरसत मिली।

अध्यापक सर विलियम क्रुक ने रेडियम की अनेक परीक्षायें की हैं। वे कहते हैं कि यदि तौल में आध किलोग्राम रेडियम एक छोटी सी शीशी के भीतर बन्द करके एक कमरे में मेज़ पर रख दी जाय तो उससे उस कमरे के भीतर जानेवाले की तत्क्षण मृत्यु हो जायगी। यदि तत्क्षण न भी मृत्यु हो, तो उसकी दृष्टि अवश्य जाती रहेगी; और शरीर का चमड़ा इतना जल जायगा कि फिर मनुष्य जीवित न रह सकेगा। रेडियम का एक बाल बराबर टुकड़ा हाथ पर रखनेसे इतना बड़ा छाला पड़ जायगा जो महीनों तक न अच्छा होने आवैगा। रेडियम से यलेक्ट्रान नामक परमाणु इतने वेग से निकलते हैं कि एक ग्राम यलेक्ट्रान का वेग अँगरेज़ों के जहाज़ी बेड़ों के समग्र समुदाय को उठाकर स्काटलैण्ड के ब्यन न्यविस नामक पहाड़ की ऊंची चोटी पर रख देगा!!!

एक मनुष्य ने रेडियम के एक कण को काँच की एक नली में रक्खा। फिर उस नली को उसने काग़ज़ के एक छोटे से बकस में बन्द किया। इस बकस को अपने पायजामे के पाकेट में ६ घण्टे तक रक्खे हुए वह एक जगह व्याख्यान देने गया। इसका यह फल हुआ कि तीन चार दिन में पायजामे के पाकेट के पास उसकी जाँघ में एक लाल दाग़ पड़ गया। इस दाग़ से एक छाला निकला। वह पक उठा और कोई ४० दिन में अच्छा हुआ!

रेडियम से डाक्टरी विद्या की बहुत कुछ उन्नति होने की सम्भावना है। उससे रोगों का बीज नाश हो जाता है। धनुषटङ्कार के समान घातक रोग उससे आराम होते हैं। जन्मान्धों तक को इस धातु से दिव्यदृष्टि मिलने की आशा है। इसकी परीक्षायें हो चुकी हैं और पूरी सफलता भी हुई

है। कितने ही अन्धे लड़के इसकी सहायता से लिखना पढ़ना सीखने लगे हैं! इसमें एक यह भी विचित्रता है कि इसकी रोशनी से कीड़े मकोड़े आदि छोटे छोटे जीवों का आकार बढ़ाया जा सकता है। सम्भव है कि, किसी दिन, इस रेडियम-विज्ञान की बदौलत डाकृर लोग दुबले, पतले, बावन अंगुल के खर्वाकार मनुष्यों को भीमसेन के सांचे में ढाल निकालें!

शिवाजी और अँगरेज़।

सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में फ़ायर नामक एक डाकृर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सरजन थे। बहुत दिनों तक उन्होंने फ़ारस और इस देश में सैर की। १६७४ ईसवी में वे इस देश में घूमने आये थे। उन्होंने अपने भ्रमण का वृत्तान्त पुस्तकाकार प्रकाशित किया है। उसका नाम है Fryer's Travels in India and Persia between 1672 and 1681. यह पुस्तक लण्डन में १६९८ ईसवी में छपकर प्रकाशित हुई। इसमें डाकृर फ्रायर ने इस देश का तत्कालीन बहुत कुछ हाल लिखा है। प्रसंगवश शिवाजी का भी कुछ वृत्तान्त उन्होंने दिया है। उसे हम यहां लिखते हैं।

इस देश में, सबसे पहले, सूरत में अँगरेज़ों ने अपनी कोठी खोली और व्यापार आरम्भ किया। सूरत में, उस समय, बड़ा व्यापार होता था। मक्का जाने के लिए वही प्रधान बन्दरगाह भी था। बड़े बड़े महाजन वहां रहते थे। डच और पोर्चुगीज़ों की भी कोठियां वहां थीं। अँगरेज़ों का जितना कारोबार वहां था, और उससे सम्बन्ध रखनेवाले जितने व्यापारी, दलाल और बहीखाता लिखनेवाले वहां थे, उन सब पर प्रेसिडण्ट की हुकूमत थी। वही वहां प्रधान अधिकारी था। सूरत की अपार सम्पत्ति का हाल सुनकर शिवाजी ने उसे लूटना चाहा। भेष बदल कर, चार दिन तक, वह शहर में घूमा और मुख्य मुख्य कोठियों और प्रधान प्रधान महाजनों के मकानों का पता लगाकर, ४,००० सवार ले कर, उस पर उसने धावा किया। ६ दिन तक उसने सूरत को लूटा और जहां तहां आग लगाकर शहर को विध्वंस कर दिया। यह घटना १६६४ ईसवी में हुई। उस समय कम्पनी की कोठियों के प्रेसिडेण्ट सर जार्ज आक्स्यनडाइन थे। केवल उन्होंने शिवाजी का मुक़ाबिला किया; और किसी देशी अथवा विदेशी ने नहीं किया। उन्होंने अपनी कोठियों की रक्षा बड़े साहस से की और उनके आदमियों ने भी बड़ी वीरता दिखाई। अतएव अँगरेज़ी कोठियां लुटने से बच गईं। उनके आस पास और लोगों की भी जो दूकानें और मकान थे वे भी बच गये। हां, अँगरेज़ों का एक बाग़, जो बहुत ही ख़ूबसूरत था, अवश्य नष्ट हो गया। शिवाजी की फ़ौज ने उसको उजाड़ दिया। शिवाजी सूरत से अपरिमित धन लूट ले गया। जब इसकी ख़बर देहली पहुंची, और सर जार्ज आक्स्यनडाइन की वीरता का वृत्तान्त औरङ्गज़ेब ने सुना, तब वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सर जार्ज के लिए ख़िलत भेजी; और कम्पनी के माल पर ढाई रुपया सैकड़ा महसूल भी कम कर दिया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेकृर्स भी सर जार्ज की वीरता पर प्रसन्न हुए और उनको सोने का एक तमगा भेजा। उस पर लैटिन में यह वाक्य खुदा हुआ था—

Non minor est virtus quam quærere parta tueri

अर्थात् सच्ची वीरता वही है जो अपने आश्रितों की रक्षा में काम आवै।

सर जार्ज के अनन्तर जेरल्ड आञ्जियर सूरत में अंगरेज़ी व्यापारियों के प्रेसिडेण्ट हुए। उनके समय में शिवाजी ने दुबारा सूरत पर धावा किया। इस बार भी ख़ूब लूट मार हुई और शहर में आग लगा दी गई। शहर के मुसलमान गवर्नर से, इस बार भी, कुछ करते धरते नहीं बना। परन्तु अंगरेज़ों ने अबके भी अपने माल असबाब को लुटजाने से बचा लिया। इस प्रकार शिवाजी

से अंगरेज़ों की, सूरत ही में पहली जान पहचान हुई।

१६६१ ईसवी में पोर्चुगल के राजा की बहन, डोना इनफैण्टा कैथरीना का विवाह इँगलैण्ड के राजा दूसरे चार्ल्स से हुआ। तब बम्बई पोर्चुगल वालों के आधीन था। उन्होंने इसे, इस अवसर पर, विवाह के उपलक्ष्य में, अंगरेज़ों को दे दिया। तब ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने यहां भी अपना कारख़ाना खोला। उस समय सूरत अंगरेज़ों का प्रधान अड्डा था। इस लिए बम्बई का कारोबार सूरत के अधिकारियों की देख भाल में रक्खा गया। तब बम्बई एक छोटा सा क़सबा था। वहां की आब हवा बहुत ही ख़राब थी। डाक्टर फ़ायर कहते हैं कि ५०० में १०० आदमी मुश्किल से वहां जीते थे। बम्बई में भी एक प्रेसिडण्ट रहता था। उसकी मातहती में एक छोटा सा कौंसिल भी था। कौंसिल ही की सलाह से सब काम होते थे।

सूरत को लूट कर शिवाजी दक्षिण को लौट गया। वहां उसके पिता शाहजी का शरीरपात हुआ। इस लिए, शिवाजी ने, यथानियम सिंहासन पर बैठकर, राजा होना निश्चय किया। इस समय, अर्थात् १६६४ ईसवी में, डाक्टर फ़ायर यहीं थे। उन्होंने शिवाजी और अंगरेज़ों के सम्बन्ध में कई बातें ऐसी लिखी हैं जो ग्राण्ट डफ लिखित मराठों के इतिहास में भी नहीं हैं। अतएव, उनको हम, यहां पर, देना उचित समझते हैं।

इस समय, शिवाजी का प्रताप बढ़ रहा था। इस लिए बम्बई के अंगरेज़ी प्रेसिडेण्ट ने, दक्षिण में व्यापार करने की अनुमति प्राप्त करने के इरादे से, एक एलची को शिवाजी के पास भेजा। शिवाजी तब रायरी के प्रसिद्ध क़िले में था। परन्तु जिस समय अंगरेज़ी दूत बम्बई से रवाना हुआ, उस समय वह तीर्थ-यात्रा करने गया था। इस लिए, उसे पुनचरा स्थान में ठहर जाना पड़ा। वहां उस दूत ने नारायण पण्डित नामक शिवाजी के एक प्रधान अधिकारी से भेंट की। नारायण पण्डित से उसने बहुत कुछ विनय-प्रार्थना की; और कहा कि यदि वह शिवाजी से कह सुनकर व्यापार करने की अनुमति दिला दे तो उससे दोनों पक्षवालों को लाभ हो। पण्डित ने कहा कि, "अनुमति अवश्य मिल जायगी। जहां से व्यापार की चीज़ें अधिक आती हैं वे स्थान बीजापुर के राज्य में हैं; और बीजापुरवाले हमारे राजा से लड़ते लड़ते ऊब उठे हैं। इस लिए वे अब सन्धि करना चाहते हैं। यह सन्धि दोही तीन महीने में हो जायगी। तब सब रास्ते खुल जायंगे। और व्यापारियों के आवागमन में कोई बाधा अथवा भीति न होगी। यथाविधि राज-तिलक हो जाने पर, राजा अपने राज्य के कारोबार को राजा के समान करेंगे और प्रजा के कल्याण की ओर अधिक ध्यान देंगे। उस समय वे व्यापार की अवश्य वृद्धि करेंगे। अभी तक, देहली और बीजापुर के साथ लड़ाइयों में लगे रहने के कारण, वे इस ओर दृष्टि नहीं दे सके"।

अंगरेज़ी एलची को मालूम हो गया कि नारायण पण्डित बहुत योग्य और बुद्धिमान पुरुष है और शिवाजी उसका बहुत आदर करता है। इस लिए चलते समय उसने पण्डित को एक हीरे की अँगूठी नज़र की और उसके जेठे पुत्र को दो अच्छे चोग़े दिये।

पुनचरा में अंगरेज़ी दूत को गरमी से बहुत कष्ट होता था। इसी समय शिवाजी प्रतापगढ़ से रायरी लौट आया। इस लिए एलची ने नारायण पण्डित से रायरी के क़िले में उठ जाने की अनुमति चाही। पण्डित ने शिवाजी की आज्ञा से अनुमति दे दी। इस लिए अंगरेज़ी दूत प्रसन्नतापूर्वक क़िले में चला गया। वहां उसके रहने के लिए एक अच्छा मकान दिया गया।

क़िले में पहुंचने के चार दिन बाद, नारायण पण्डित के कहने से, शिवाजी ने अंगरेज़ी दूत से मिलना स्वीकार किया। यद्यपि, उस समय, अपने राज-तिलक और विवाह आदि कई बड़े बड़े कामों के कारण, शिवाजी को बहुत कम अवकाश

था, तथापि उसने, कुछ देर के लिए, उस दूत को सभा में आने की आज्ञा दी। यथा-नियम अंगरेज़ी दूत शिवाजी की सभा में प्रविष्ट हुआ। आकर उसने शिवाजी और उसके पुत्र सम्भाजी को, जो कुछ भेंट करना था, किया। इस भेंट से शिवाजी बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा कि उसके राज्य में, अंगरेज़ निर्भयता-पूर्वक व्यापार कर सकते हैं, क्योंकि अब सब प्रकार शान्ति है। लूट मार और लड़ाई का डर नहीं रहा। अंगरेज़ी एलची ने कहा कि—"इसी लिए प्रेसिडेण्ट ने उसे भेजा है। वह यही चाहता है कि अंगरेज़ों को दक्षिण में उन्हीं शर्तों पर व्यापार करने की अनुमति मिलै जिन शर्तों पर वे हिन्दोस्तान और फ़ारस में व्यापार करते हैं" इस पर शिवाजी ने मोरोपन्त पेशवा को उन शर्तों पर विचार करने के लिए आज्ञा दी; और आप अपने पुत्र समेत, राज तिलक सम्बन्धी बात चीत करने के निमित्त, भीतर चला गया। इधर अंगरेज़ी एलची भी अपने डेरे को लौट आया।

इस समय शिवा जी ने ५६,००० रुपये के मोल की अशरफ़ियों का तुलादान किया। यह धन, राज-तिलक होने पर, ब्राह्मणों को बांट दिया गया। साथही और भी बहुत सा द्रव्य दान किया गया।

व्यापार की शर्तों के विषय में जब अँगरेज़ी दूत ने नारायण पण्डित से पूछा, तब उसे विदित हुआ कि दो शर्तों को छोड़ कर शेष सब शर्तें शिवाजी ने मंज़ूर कर लीं। अँगरेज़ों की इच्छा थी कि उनका सिक्का शिवा जी के राज्य में, और शिवा जी का सिक्का उनके यहां, चल जाय। यह शर्त शिवाजी ने मंज़ूर नहीं की। उसने कहा कि यदि अँगरेज़ी सिक्का इस योग्य होगा कि लोग उसे और सिक्कों के समान बिना हानि के काम में ला सकें, तो वे उसे अवश्यही लेंगे। नियम करने की आवश्यकता नहीं। दूसरी शर्त यह थी कि अँगरेज़ों के जहाज़, या उनका माल असबाब, यदि कोकन के सामुद्रिक किनारे में लूट जाय, अथवा तूफ़ान से डूब जाय, उससे होनेवाली हानि पूरी कर दी जाय। इसे भी शिवाजी ने नामंज़ूर किया। उसने कहा कि यदि यह शर्त अँगरेज़ों से की जायगी तो डच और फ्रेञ्च भी वही शर्त करना चाहेंगे। इन दो शर्तों को छोड़ कर और सब शर्तें शिवाजी ने स्वीकार कर लीं और अँगरेज़ों से, सब प्रकार, मैत्री रखना भी अङ्गीकार किया।

रायरी में अँगरेज़ी दूत को एक महीना हो गया। इतने में नारायण पण्डित ने, एक दिन, कहला भेजा कि कल प्रातःकाल ७ बजे शिवाजी को राज-गद्दी होगी। इसलिए, उस अवसर पर, आप भी कृपा करके पधारिये। ऐसे समय में ख़ाली हाथ आना उचित नहीं होता। अतएव राजा को भेंट करने के लिए कोई छोटी मोटी चीज़ भी आप अपने साथ लाइएगा। अँगरेज़ी दूत ने इस निमन्त्रण को ख़ुशी से स्वीकार किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब अँगरेज़ी दूत अपने साथियों समेत शिवाजी के दरबार में पहुँचा तब उसने शिवाजी को एक विशाल और देदीप्यमान सिंहासन पर बैठा देखा। उसके सरदार बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहने हुए उसके दोनों ओर खड़े थे। सम्भाजी, मोरोपन्त पेशवा और एक पण्डित सिंहासन के नीचे बैठे थे। शेष सब लोग बड़े आदर और नम्र भाव से खड़े थे। अँगरेज़ी दूत ने शिवाजी को दूर से सादर सलाम किया। उसकी भेंट की हुई हीरे की अँगूठी को नारायण पण्डित ने अपने हाथ में लेकर शिवा जी के सामने किया। शिवा जी ने उसकी ओर नज़र उठाई और अँगरेज़ी दूत को अपने सिंहासन के पास तक बुलाया। वहां उसके पहुँचने पर उसे ख़िलत हुई और वह फिर अपने पहले स्थान को लौट आया। उसने वहां से देखा कि शिवाजी के सिंहासन के दाहिनी ओर सुवर्ण की दो बड़ी बड़ी मछलियां लटक रही थीं, और बांई ओर सुवर्ण का एक तराज़ू भाले पर टँगा था। इसके दो दिन बाद शिवाजी

ने एक मनोहर कन्यारत्न से विवाह किया। यह उसकी चैाथी रानी हुई।

कुछ काल के अनन्तर शर्तनामे पर हस्ताक्षर कराके अँगरेज़ी दूत बम्बई लैाट आया। तब से शिवा जी ग्रैार अँगरेज़ों में मित्रता स्थापन हुई।

१६७७ ईसवी में शिवाजी ने कर्नाटक पर चढ़ाई की। तब तक अँगरेज़ों ने मद्रास में भी अपना प्रभुत्व जमा लिया था। वहां उस समय स्ट्रनशम मास्टर्स नामक एक अँगरेज़ गवर्नर था। शिवाजी की चढ़ाई के सम्बन्ध में उसने अपनी दिनचर्य्या में इस प्रकार लिखा—

"१४ मे १६७७। आज शिवा जी का पत्र आया। एक ब्राह्मण उसे लाया। उसके साथ दे। आदमी ग्रैार थे। इस पत्र में शिवाजी ने कुछ दवाइयां इत्यादि मांगी हैं। हमलोगों ने दवाइयां भी भेजदीं ग्रैार शिष्टतासूचक एक पत्र के साथ कुछ फल भी भेज दिये। पत्र लानेवाले ब्राह्मण को कुछ कपड़ा ग्रैार चन्दन दियागया। शिवा जी ने दवाइयों का दाम देना चाहा था, ग्रैार अपने पत्र में यह बात लिख भी दी थी; परन्तु, ऐसी तुच्छ चीज़ों का दाम लेना उचित नहीं समझा गया। शिवाजी बहुत बड़ा आदमी है। उसकी मित्रता से हमारी माननीय कम्पनी के लाभ पहुँच चुका है; ग्रैार जैसे जैसे उसकी शक्ति बढ़ती जाती है तैसे तैसे ग्रैार भी अधिक लाभ की सम्भावना है"।

इस अवसर पर जे। नज़र शिवाजी को भेजी गई उसका मूल्य कुल कोई २१०) रुपए था। इसके अनन्तर कुछ दिन में शिवाजी ने फिर थोड़ी सी दवाइयां इत्यादि मद्रास के गवर्नर से मँगाईं। गवर्नर ने, इस बार भी, प्रसन्नता पूर्वक शिवाजी की इच्छा पूर्ण की। उस समय शिवाजी से सारा देश डरता था। मद्रास के अँगरेज़ ते। कई बार यह सुनकर भयभीत हुए थे कि शिवाजी डच ग्रैार अँगरेज़ी ज़मीदारियों पर चढ़ाई करके उन्हें छीन लेना चाहता है। कुछ काल में, जब उन्होंने सुना, कि शिवा जी माइसोर के नायक से कई रुधिरवर्षी लड़ाइयां करके अपने देश के लैाट गया, तब वे बहुत प्रसन्न हुए ग्रैार उनके जी में जी आया।

पारस्परिक राजधर्म्म।

[The international law.]

आज कल रूस ग्रैार जापान में लोमर्षण युद्ध हो रहा है; ग्रैार यह भी सन्देह है, कि इसमें फ़्रांस अथवा जर्मनी रूस का योग दें ग्रैार अमेरिका अथवा हमारी सरकार जापान का पक्ष ग्रहण करें। योरप की अन्य छोटी छोटी रियासतें भी बड़ीही उद्विग्नता से युद्ध सामग्री एकत्रित कर रही हैं। इधर रूस ने चीन का मञ्चूरिया प्रदेश दबाया है; अतः सम्भव है कि चीन के भी इस प्रचण्ड युद्ध में सम्मिलित होना पड़े। हमें पूर्ण विश्वास है कि एक न एक दिन या ते। पूर्व में, या योरोपीय तुर्किस्तान के पास, एक प्रचण्ड महाभारत का सा युद्ध होगा। परन्तु शङ्का है कि कहीं वह युद्ध यही न हो जाय। उधर पश्चिम में तुर्कों, तथा बलग़ारियावालें में भी शान्तप्राय पुरानी आग धधकनेवाली है, ग्रैार रूसी भारतवर्ष पर आक्रमण करने के धमका रहे हैं। कुछ शक्तियां युद्ध कर रही हैं ग्रैार कुछ अपनी उदासीनता की घोषणा दे रही हैं। ऐसे समय में यह जानना बड़ाही आवश्यक है कि युद्धकर्त्ताओं ग्रैार अयुद्धकर्त्ताओं के परस्पर, आधुनिक रीति के अनुसार, क्या धर्म्म, अधिकार तथा कर्त्तव्य हैं। इसी कारण हम आज पारस्परिक-राजधर्म्म-विषयक दे। चार बातें इधर उधर से एकत्रित करके अपने पाठकों से निवेदन किया चाहते हैं। आशा है कि इससे हमारे युद्धसमाचारप्रिय पाठकों का अवश्य मनोरञ्जन होगा—

"पारस्परिक-राज-धर्म्म" राज्यों के आचरण सम्बन्धी उस नियम-समूह के कहते हैं जिसके समस्त पृथ्वी-मण्डल की रियासतें अथवा कम से कम सभ्य रियासतें मान्य समझती हैं। दुर्भाग्यवश

ये नियम बड़े अनिश्चित हैं और प्रत्येक राज्य वही नियम नहीं मानती है। कारण यह कि ये नियम किसी लेजिस्लेटिव (क़ानून बनानेवाली) सभा में नहीं बनाये गये हैं। परन्तु सभ्य जातियों के साधारण तथा युद्धकाल के आचरण से निकले हैं। फिर साधारण काल में तो बहुतों का आचरण अच्छा रहता है, परन्तु युद्ध काल में यह दशा पलट जाती है और राजा लोग सभी प्रकार की बातें कर बैठते हैं और अन्त में यही कह देते हैं कि हमारा आचारण राजधर्म्म के प्रतिकूल नहीं है। सन् १८८४ ई० में जब युद्ध-सामग्री निश्चय की जाती थी तब रूस ने कहा था कि वह कोयले को युद्ध-सामग्री नहीं मानता। परन्तु अब युद्ध-काल में वही रूस उसी कोयले को युद्ध-सामग्री कहने में लज्जित नहीं होता। अतः ऐसी दशा में इस धर्म्म का निश्चित होना कैसे सम्भव है? फिर पन्द्रहवीं शताब्दी पर्य्यन्त योरप में कोई ऐसा धर्म्म न था, वरन् प्रत्येक रियासत और राजा युद्ध-काल में अपनी इच्छानुकूल वर्त्ताव करता था और उसके कठिन आचरण के केवल उसीके धर्म्म दया आदि बाधक थे। हर्ष की बात है कि हमारे यहां महाभारत के समय के प्रथम से ही यह धर्म्म पूर्णता को प्राप्त हो चुका था। परन्तु दुर्भाग्य-वश हमारी सब बातों की भांति हमारा राजधर्म्म भी पुराना हो गया है और अब वह रद्दबदल चाहता है। इसी राजधर्म्म के पूर्णरूप से संस्थापित होने के कारण हिन्दुओं ने अपनी किसी विजय में क्रूर आचारण नहीं दिखाया। परन्तु इसके पुराने हो जाने के कारण इसीके अनुसार चलने से उन्हें दो एक बार धोखा खाकर हारना पड़ा। अस्तु—धीरे धीरे पन्द्रहवीं शताब्दी से हमारे भारतेन्दु जी के कथनानुसार पश्चिम से सभ्यता का सूर्य्य उदय हुआ और धीरे धीरे समस्त पृथ्वीमण्डल तक फैल के पूर्व के अन्त तक को उजियाला कर दिया। अनेकानेक लेखकों ने इस विषय में पुस्तकें लिखना भी प्रारम्भ किया। अतः राजधर्म्म में धीरे धीरे निश्चित नियमों की वृद्धि होने लगी। अब बहुत से नियमों पर प्रायः प्रत्येक सभ्यजाति की सहानुभूति है; परन्तु अब भी कितनेही नियम ऐसे हैं जिनके विषय कोई कुछ कहता है और कोई कुछ।

सबसे प्रथम यह प्रश्न उठता है कि इसे हम धर्म्म कैसे कह सकते हैं। क़ानून के लिये मनानेवाली शक्ति की आवश्यकता है। यदि कोई व्यक्ति कहै कि मैं सरकारी दण्ड-संग्रह को नहीं मानता हूं तो यदि वह ऐसा कह कर उस दण्ड-संग्रह के विरुद्ध कोई कार्य्य करने का भी साहस करै तो सरकार उसे दण्ड देकर मना देगी कि दण्डशास्त्र का मानना आवश्यक है। परन्तु यदि कोई राजा पारस्परिक राजधर्म्म के किसी निश्चित नियम को भी न मानै तो उसका मनानेवाला कोई नहीं है, केवल अन्य राजा लोग उसको बुरा समझेंगे और उसका यह कार्य्य जिस राज्य का हानिकारी हुआ है उसे अधिकार है कि उस अपकारी राजा से युद्ध करै। परन्तु प्रत्येक राज्य को युद्ध करने का सदैव अधिकार है, अतः धर्म्मध्वंसक राजा का कोई मुख्य दंड नहीं हुआ। फिर सम्भव है कि युद्ध में वहीं धर्म्मध्वंसक राजा विजयी हो। इस रूस जापान वाले युद्ध में प्रत्येक मनुष्य कहता है कि रूस धर्म्मघातक है; परन्तु तोभी सम्भव है कि युद्ध में वही विजय प्राप्त करै। और यदि किसी छोटी रियासतसे लड़ाई होती तो वह अवश्य जीतता। तथापि यथा सम्भव रियासतें इन नियमों के पालन करने का प्रयत्न अवश्य करती हैं।

इस धर्म्म के नियम दो प्रकार के होते हैं, एक शान्ति-सम्बन्धी, द्वितीय युद्ध-सम्बन्धी। द्वितीय प्रकार के नियम प्रथम की अपेक्षा गणना में बहुत अधिक हैं। प्रत्येक प्रकार दो दो भागों में पुनः विभक्त हैं—यथा व्यक्ति सम्बन्धी और राज्य सम्बन्धी (Private and Public). इन धर्म्मशास्त्रीय नियमों के वर्त्ताव के लिये यह आवश्यक है कि वादी और प्रतिवादी किसी एक पक्ष का अवश्य हो।

"रियासत" एक ऐसे जनसमूह के कहते हैं जिसका निश्चित भूमि पर अधिकार हो, जिस भूमि में उसी समूह का राज्य पूर्ण अधिकार रखता हो और उसके अधिकार पर किसी बाह्य शक्ति का स्वल्प मात्र भी प्रभाव न हो। पृथ्वीमंडल की रियासतों की सीमा ऐसी निश्चित नहीं है जैसा कि ऊपर लिखा गया है, तथापि राजधर्म्म के लिए ऐसा मान लेना चाहिये। पृथ्वी में रियासत कहानेवाली बहुत सी ऐसी मंडलियां भी हैं जो देखने में तो स्वतन्त्र ज्ञात होती हैं परन्तु वास्तव में वे किसी अन्य रियासत की आज्ञाकारिणी हैं। किसी रियासत के स्वतन्त्र अथवा परतन्त्र होने की मुख्य जांच यह है कि यदि वह किसी अन्य रियासत के बिना पूछे जांचे दूसरी रियासतों से विग्रह अथवा सन्धि कर सकती है तो स्वतन्त्र है, नहीं तो नहीं। अन्तिम दशा में वह परतन्त्र है। उसका राजा, राजाओं के समाज का सभ्य नहीं समझा जा सकता। ऐसी रियासत पारस्परिक राजधर्म्म से कोई सरोकार नहीं रखती है। इसी हेतु जापान ने छूटते ही छूटते कोरिया से यह सन्धि कर ली कि उसे बिना जापान के पूछे पृथ्वी मण्डल की किसी अन्य रियासत से सन्धि करने का अधिकार नहीं है। अतः इस लेख में हम लक्षणानुसार राज्य, रियासत, शक्ति, जाति आदि शब्दों से स्वतन्त्र रियासतों का बोध करेंगे।

प्रत्येक रियासत क़ानून की दृष्टि में बराबर है, चाहे वह छोटी हो या बड़ी। पारस्परिक राजधर्म्मानुसार स्वीटजरलैण्ड, आरजंटाइन, इंग्लैंड, रूस, जापान आदि में कोई भेद नहीं है। इनमें से प्रत्येक रियासत है और प्रत्येक के वही अधिकार एवं कर्त्तव्य हैं। हर एक रियासत के चार मुख्य अधिकार हैं-(१) अन्य देशस्थ अपनी प्रजा की रक्षा करना, (२) सब से अपने अस्तित्व को मनवाना, (३) सबसे सम्मानित होना और (४) जिस से चाहै सन्धि विग्रह करना। रियासतों के अस्तित्व-सम्बन्धी विषय पर कभी कभी बड़ा कठिन प्रश्न उपस्थित हो जाता है, जब कोई परतन्त्र रियासत अथवा प्रजामण्डली मुख्य रियासत से झगड़ा करके स्वतन्त्र हो जाती है। माना कि कुछ लड़ाई हुई और बिना किसी नई सन्धि के हुये झगड़ा ठहर गया। अब नई रियासत अपने को स्वतन्त्र कहती है और मुख्य रियासत उसे परतन्त्र अथवा प्रजा मण्डली कहती है। ऐसे समय में यदि उसे रियासत माना जाय तो सम्भव है कि अन्त में यह ठहरै कि अमुक व्यक्ति झगड़ा उभाड़ता है, और यदि उसे रियासत न मानैं तो यह ठहरै कि अमुक एक रियासत को रियासत नहीं कहता। ऐसी अवस्था में यह उचित है कि वास्तविक दशा पर खूब ध्यान देकर यदि यह जान पड़ै कि वह स्वतन्त्र है तो उसे रियासत कहना चाहिये, चाहे जितनी बेईमानी अथवा दग़ाबाज़ी से वह स्वतन्त्र हुई हो। यदि वास्तव में वह स्वतन्त्र नहीं है तो उसे रियासत न कहना चाहिये।

व्यक्ति-सम्बन्धी पारस्परिक राजधर्म्म।

२—इसके नियम ये हैं कि यदि किसी रियासत की कोई प्रजा किसी दूसरी रियासत में रहै तो उसपर कोई अत्याचार न हो, अथवा यदि वह वहां मरै तो उसकी सम्पत्ति के विभाग में उसके निवासस्थान का क़ानून बर्ता जाय, न कि उस देश का जिसमें वह मरा हो। इसी प्रकार के अन्य नियमों का भी समावेश इस विभाग में होता है।

राज्य-सम्बन्धी पारस्परिक राजधर्म्म।

३—इस विभाग में केवल रियासतों का वर्णन है और इसमें वादी प्रतिवादी दोनों रियासतें होती हैं। सबसे प्रथम यह प्रश्न उठता है कि किसी रियासत का राज्य किन पदार्थों पर समझना चाहिये। प्रत्येक रियासत का आधिपत्य उसकी सीमा के अन्तर्गत भूमि पर, जलपर, नदियों के मुहानों पर, खाड़ियों पर और भूमितट से तीन मील पर्य्यन्त समुद्र में समझा जाता है। तट से तीन मील आगे समुद्र किसीका नहीं है, उसे स्वतन्त्र सागर (high seas) कहते हैं। यह मान

लिया गया है कि जिस रियासत का जहाज़ जहां खड़ा हो उतने स्थान पर समुद्र उसी रियासत का है और जिस रियासत की प्रजा का जलयान स्वतन्त्र सागर में जहां खड़ा हो वह स्थान उसी रियासत का है। प्रत्येक शक्ति के राजदूत अन्य राजदरबारों में सदैव रहा करते हैं। उन राजदूतों का घर, उनकी सम्पत्ति और उनकी स्त्री, बालक, नौकर चाकर आदि भी उसी रियासत में समझे जाते हैं जिसकी ओर से वे नियत हैं। कोई राजदूत किसी ऐसी रियासत में, जिसमें कि वह अपने राजा की ओरसे नियत हो, जुर्म करने से दण्डित नहीं हो सकता, न उसपर कोई दीवानी अथवा माल का मुक़द्दमा क़ायम हो सकता है। राजदूतों के लिये जो पदार्थ आवें उन पर चुंगी आदि कोई टिकस नहीं लगाई जा सकती, और न उनके पूजनप्रकार में किसी प्रकार का विघ्न डाला जा सकता है, चाहे उस प्रकार का पूजन उस राज्य में वर्जित हो। यदि उस पर कोई अभियोग लगाना चाहै अथवा कोई दीवानी या माल का मुक़द्दमा क़ायम करना चाहै तो उसीकी रियासत में ऐसा हो सकता है।

(४) जब रियासतों में किसी विषय पर बिभ्राट उत्पन्न होता है तब प्रथम यह प्रयत्न किया जाता है कि वह राजदूतों द्वारा शान्त हो जाय। यदि ऐसा न हो सका तो युद्ध करना पड़ता है। परन्तु शान्ति और युद्ध के पहले चार और बातें हैं जिनसे छोटे छोटे झगड़े निबटा लिये जाते हैं। (१) जलयान ग्रहण (embargo) अथवा किसी रियासत के जहाज़ को इस हेतु पकड़ लेना कि उससे अपना झगड़ा शान्त होने पर उसका जलयान देंगे और इस प्रकार उसे न्याय करने पर मजबूर करना। (२) प्रत्युपकार (reprisal) अर्थात् किसी रियासत अथवा उसकी प्रजा को वही हानि पहुंचाना जो उसने हमें पहुंचाया है। (३) छीना छोरी (reprisal) अर्थात् हानि पहुंचने के प्रत्यपकार में किसी रियासत की कोई सम्पत्ति छीन लेना, और (४) शान्ति में घेरा (peaceful blockades) अर्थात् किसी अयुद्ध-कर्त्ता शक्ति के बन्दरगाहों को अपने जलयानों द्वारा घेरना। यह चतुर्थ अधिकार भी दो एक बार काम में लाया गया है, परन्तु इसे युद्धारम्भ समझना चाहिये।

युद्ध।

(५) युद्ध दो प्रकार का होता है एक उचित, द्वितीय अनुचित। राजधर्म्म को इन दोनों प्रकारों से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। रूस जापानी लड़ाई में यह स्पष्ट है कि रूस ने अनुचित युद्ध किया है और जापान ने उचित। रूस ने कई बार वादा किया कि मैं मञ्चूरिया से अपनी सेना हटा लूंगा, परन्तु उसने ऐसा न किया, बरन् कोरिया को भी हड़प लेने का पूर्ण प्रबन्ध किया और मङ्गोलिया पर भी हस्तक्षेप करने का उसका पूरा इरादः देख पड़ता है। तथापि राजधर्म्मानुसार ऐसी लड़ाई और उचित लड़ाई में कोई अन्तर नहीं है। हां, धर्म्मानुसार उनमें अन्तर अवश्य है। राजधर्म्म भी चाहता है कि वह इन दोनों प्रकार की लड़ाइयों में अन्तर मानै, परन्तु उसमें ऐसा करने की शक्ति नहीं है। जिस दिन पृथ्वीमण्डल की समस्त रियासतें स्वार्थ-लोलुपता छोड़ देंगी, अथवा समस्त अन्य शक्तियां धर्म्मपालन को अपना इतना बड़ा कर्त्तव्य समझ लेंगी, कि किसी स्वार्थी रियासत के अनुचित युद्ध करने पर सब मिलकर उसे धर्म्म पालन पर विवश करेंगी, तब अनुचित युद्ध होना बन्द हो जायगा। परन्तु इन दोनों बातों में एक का भी होना असम्भव है, विशेष करके यह देखकर कि साधारण व्यक्तियों से शक्तियां कहीं बढ़ कर स्वार्थ लोलुप एवं धर्म्मविरोधी हैं।

युद्ध के नियम।

(क) पूर्वकाल में लोगों का यह विचार था कि दो रियासतों में युद्ध छिड़ने पर एक की प्रजा द्वितीय की प्रजा की शत्रु हो जाती है, और उन्हें अधिकार है कि शत्रु-शक्ति के किसी मनुष्य को चाहै मारैं, चाहैं लूटैं। इस प्राचीन विचार की कठिनता अब बहुत सरल हो गई है,

परन्तु अब भी पूर्णरूप से यह स्थिर नहीं है कि उनकी प्रजा के क्या क्या अधिकार हैं। अब यह एक नियम है कि लड़ाई के सम्बन्ध में अयुद्ध-कर्त्ता प्रजागण उदासीन समझे जायंगे और लूट की सब सामग्री लूटनेवाली रियासत की समझी जायगी, न कि स्वयं लूटनेवाले सिपाहियों की। यथा-साध्य रियासत का माल छोड़कर व्यक्ति-विशेष की सम्पत्ति न लूटी जायगी, परन्तु यह अन्तिम नियम भली भांति स्थापित नहीं है। अमेरिका इसको नहीं मानती है। और अन्य शक्तियों के विषय भी निश्चित नहीं है कि वे इसे मानती हैं या नहीं। राज-धर्म्मानुसार यह उचित है कि जब किसी शत्रु-देश पर स्वल्प काल को अधिकार मिलै तो सरकारी पदार्थ सब लूट लिये जायं, और प्रजा की भी युद्ध-सामग्री लूट ली जाय, और बिजयी शक्ति पराजित शक्ति के राजभवनों अथवा प्रासादों को प्रबन्धकारी की भाँति काम में लावै; परन्तु उन को तोड़ फोड़ न डालें और प्रजा की युद्ध सामग्री छोड़कर कोई वस्तु न लूटें। इतना अधिकार अवश्य है कि उनसे टिकस अथवा चन्दे की भांति कुछ वसूल करें और जो वसूल करै उसकी रसीद दे दे।

प्राचीन समय में यह भी एक नियम था कि व्यक्ति-विशेष के जलयानों को अधिकार दे दिया जाय कि वे शत्रु के जल-यानों को जहां पावैं लूटें। इसको व्यक्तिगत लूट (privateering) कहते हैं। यह रीति अब उठा दी गई है; केवल अमेरिका अब भी इसे मानती है। राजधर्म्म की यह एक बड़ी बहादुरी है कि यह घृणित कर्म्म अब उठ सा गया है। परन्तु रियासतों को अब भी यह अधिकार है कि वे शत्रु-शक्ति अथवा शत्रु-प्रजाके जल-यान अथवा कोई सामग्री लूट लें। राजधर्म्म का इस विषय में उच्चतम विचार यह है कि लड़नेवाली रियासतों की अयुद्धकारी प्रजा को वे अधिकार रहें जो कि उनको शान्ति के समय रहते हैं। परन्तु इस विचारका पूरा होना बहुत कठिन देख पड़ता है।

शत्रु-प्रजा को यह अधिकार नहीं है कि वे युद्ध के समय शत्रु-रियासत में किसीके ऊपर कोई मुक़द्दमा चलावैं, अथवा शत्रु-देश से व्यापारिक सम्बन्ध रक्खैं, अथवा शत्रु-रियासत से किसी ऐसे निबन्ध को जो उसने उनके साथ किया हो, पूरा करावैं, परन्तु युद्ध समाप्त होने पर उस रियासत को वह मुआहिदः पूरा करना पड़ैगा।

(ख) युद्धकारी शक्तियों का यह भी कर्त्तव्य है कि युद्ध में भी विष अथवा विषैले अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग न करैं; धोखा देकर किसी को न मारैं; ऐसे शत्रु का, जिसने अस्त्र डाल दिये हों, वध न करैं; और यह भी न कहैं कि हम किसी शत्रु को कैद न करैंगे वरन् उसे मारही डालैंगे। उन्हें ऐसे शस्त्र भी न चलाने चाहियें जिनसे मरने के समय बड़ी पीड़ा हो, अथवा जिनका चलाना सन् १८६८ ई० की सेंट पीटर्सबर्ग की घोषणा में वर्जित कर दिया गया है। शत्रु को अधिकार है कि युद्ध करते हुए रिपु को मार डालै; परन्तु उसे वैरी को वृथा क्लेश पहुंचाने का अधिकार नहीं है। उसे यह भी अधिकार नहीं है कि सन्धि के झण्डे को दिखाकर शत्रु को धोखे में डालै; अथवा शत्रु की सम्पत्ति का वृथा ही सत्यानाश करै। यदि कोई वैरी का भेदिया पकड़ा जाय तो पकड़नेवाले को अधिकार है कि उसे अपने धर्म्मानुसार दण्ड दे। आहत शत्रुओं से जेनेवा महासभा के नियमानुसार बर्ताव करना चाहिये। इस महासभा में चिकित्सालय आदि का प्रबन्ध किया गया था और यह भी नियम बना था कि अस्पतालवाले मनुष्यों से उदासीनों का सा व्यवहार किया जाय। सभ्य युद्ध-कर्त्ताओं को यह अधिकार नहीं है कि सभ्य शक्तियों से लड़ने में असभ्य सेना का प्रयोग करैं।

उदासीनता।

६—यहां तक हम शत्रुओं से जैसा व्यवहार करना चाहिये वह लिख चुके। यह निश्चय है कि जब दो शक्तियों से युद्ध होगा तब उनके जलयानों एवं सेनाओं से उदासीन (neutral) शक्तियों के

जहाज़ों और मनुष्यों से काम पड़ेगा। उदासीन शक्तियां न लड़कर भी बहुत सी ऐसी बातें कर सकती हैं जिससे एक युद्धकारी को लाभ हो और द्वितीय को हानि। इसी प्रकार लड़ाकों के आचरण से उदासीन शक्तियों की भी बड़ी हानि हो सकती है अथवा उन्हें लाभ हो सकता है। अतः हम उदासीनों के अधिकार एवं कर्त्तव्य तथा उनके सम्बन्ध में युद्ध-कारियों के कर्त्तव्य एवं अधिकार नीचे लिखते हैं।

उदासीन शक्तियों के अधिकार।

(क) उदासीन रियासतों को अधिकार है कि वे युद्ध से यथासाध्य अपनी कोई हानि न होने दें। यथा, यदि किसी शत्रु ने किसी राजधानी को घेरा हो, जिसमें उदासीन राजदूत प्रस्तुत हो, तो उस दूत को अधिकार होगा कि अपनी सरकार को पत्र आदि बराबर भेजा करै। शत्रु-शक्ति को भी अधिकार है कि वह वे पत्र देख ले, परन्तु उन्हें रोकने का उसे अधिकार नहीं है। इसी प्रकार उदासीन राजदूतों को अधिकार है कि एक शत्रु के यहां द्वितीय शत्रु की प्रजा के साधारण अधिकारों के देखने और सुरक्षित रखने का भार अपने ऊपर लें। इसी से इस लड़ाई में जापान में फ़्रांसीसी राजदूत ने रूस के और रूस में अँगरेज़ी राजदूत ने जापान के अधिकार सुरक्षित रखने का भार अपने ऊपर लिया है।

(ख) उदासीन शक्तियों को यह भी अधिकार है कि जब वे यह देखें कि दो शक्तियों में लड़ाई होने वाली है तब बीच में पड़कर झगड़ा पाक कर दें; अथवा पञ्चायत करदें; जैसाकि इस बार जरमनी, अमेरिका तथा इंग्लैण्ड करने वाले थे, परन्तु जापान ने पहले ही से कह दिया कि वह पञ्चायत मंज़ूर नहीं करैगा।

(ग) उदासीन प्रजा को यह भी अधिकार है कि युद्धकर्त्ताओं के देश में सदाही की भांति व्यापार करें, परन्तु यदि किसी युद्ध-कर्त्ता के देश पर द्वितीय का अधिकार हो जाय तो उदासीन व्यापारियों की दशा पराजित देशवासियों की दशा से उत्तमतर कदापि किसी दशा में न होगी।

(घ) उदासीन राजा के जलयान, जो राजकाज में लगे हों, पकड़े नहीं जा सकते। परन्तु युद्धकर्त्ता को अधिकार है कि उदासीन प्रजा के जहाज़ पकड़ कर देखै कि उनमें युद्ध-सामग्री तो नहीं है। डाक के जहाज़ों के विषय कुछ कुछ सन्देह है। जापान का यह नियम है कि कोई जलयान जो शत्रुबन्दर को जाता हो और जिसमें युद्ध-सामग्री हो, पकड़ा जा सकता है, चाहै वह डाक का भी जहाज़ हो। अमेरिका का मत है कि डाकके धूमपोत बिना भारी सन्देह के पकड़े नहीं जा सकते। साधारण व्यवहार यह है कि ऐसे जहाज़ों को कोई बिना सन्देह के नहीं पकड़ता। उदासीन रियासतों के पैकेट भी नहीं पकड़े जाते।

(ङ) यदि किसी उदासीन का कोई व्यापारी जहाज़ उसके किसी युद्धकारी जहाज़ के साथ जाता हो और लड़ाके जहाज़ का कप्तान कह दे कि व्यापारी में युद्ध-सामग्री नहीं है तो सिवा इङ्गलैण्ड के उसे कोई न पकड़ैगा।

उदासीन रियासतों के कर्त्तव्य।

(क) उदासीन राज्यों को चाहिये कि वे किसी युद्धकर्त्ता को अपने राज्य से चलकर युद्ध न करने दें, न किसी शस्त्रधारी लड़ाके को अपनी सीमा के भीतर घुसने दें। यदि कोई युद्धकर्त्ता दौड़ कर उदासीन रियासत में घुस जाय तो वह शक्ति उसे निरस्त्र कर देगी और जब तक युद्ध समाप्त न हो जायगा उसे वहीं रहना होगा। यदि कोई लड़नेवाला भागता हुआ उदासीन राज्य में घुस जाय तो भी उसकी यही दशा होगी। परन्तु उसका शत्रु भी उसे वहां न पकड़ सकैगा और न मारने पावैगा। उदासीन बन्दरगाहों में लड़ाई के जहाज़ २४ घण्टे से अधिक नहीं रह सकते और न अधिक कोयला मोल ले सकते हैं। यदि वे शपथ पूर्वक कहैं कि उनके पास कोयला बिलकुल नहीं है तो उन्हें इतना कोयला मोल दिया जायगा कि, वे अपने देश

की ओर जाने में, जो बन्दर राह में सबसे निकट पड़ता हो, उस तक पहुंच जायं। उस बन्दर में जाकर उन्हें फिर दूसरे बन्दर तक पहुंचने तक को कोयला दिया जायगा, और इसी प्रकार वे धीरे धीरे स्वदेश पहुंच जायँगे। यदि उसी बन्दर से कोई लड़ाई का जहाज़ जा चुका होगा तो उसके २४ घण्टे पीछे तक उसके शत्रु का कोई जहाज़ उस बन्दर से चलने नहीं पावैगा। यदि दैववशात् किसी उदासीन बन्दर पर शत्रुओं के जहाज़ मिल जायँ तो उन्हें वहां लड़ने अथवा माल लूटने का अधिकार नहीं है। यदि कोई जहाज़ २४ घण्टे से अधिक रहना चाहैगा तो निरस्त्र कर दिया जावैगा।

(ख) उदासीन शक्तियां किसी लड़ाके के यहां अपनी प्रजा को युद्धार्थ नहीं नौकर होने देंगी; किसी लड़नेवाले जहाज़ को अपने बन्दर से युद्धार्थ नहीं तैयार होने देंगी; जो जहाज़ मुख्यशः उन्हीं के बन्दर की सहायता से युद्धार्थ तैयार हुआ है उसे वहां से नहीं जाने देंगी; किसी लड़नेवाले को अपने बन्दर अथवा भूमि को लड़ने का सदर मुक़ाम नहीं बनाने देंगी; और अस्त्र शस्त्र अथवा युद्ध सामग्री के बर्द्धमान करने के लिये किसी युद्धकर्त्ता को अपना राज्य नहीं काम में लाने देंगी।

(ग) उनका यह भी कर्त्तव्य है कि युद्धारम्भ में अपनी उदासीनता की घोषणा दे दें। परन्तु समस्त रियासतें ऐसा नहीं करती हैं। जर्मनी ने कभी अपनी उदासीनता की घोषणा नहीं दी और न इस बारही उसने ऐसा किया।

(घ) उदासीन रियासतों की प्रजा का यह अधिकार अवश्य है कि वे युद्धकर्त्ताओं के हाथ अस्त्र शस्त्र बेचें; परन्तु यदि युद्धकारी शक्ति उनके अस्त्र शस्त्र पा जायगी तो उन्हें ज़ब्त कर लेगी और तब उदासीन शक्ति उलाहना नहीं दे सकैगी।

(ङ) यदि उदासीन शक्ति के राज्य से एक युद्धकर्त्ता कुछ उधार लेवे, और अब द्वितीय भी चाहै कि मैं लूं, तो वह उदासीन शक्ति उसे ऐसा करने से रोक नहीं सकती। उदासीन अधिकार एवं कर्त्तव्य का सारांश यह है कि वे किसी युद्धकर्त्ता की अनुचित सहायता न करें और न किसी को हानि पहुंचावें।

युद्धकर्त्ताओं के कर्त्तव्य।

(क) युद्धकर्त्ताओं को यह अधिकार नहीं है कि वे उदासीन देश में युद्ध के हेतु कोई कार्य्यवाही करें। यदि कोई युद्धकर्त्ता-सिपाही उदासीन राज्य में चला जायगा तो, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वह निरस्त्र कर दिया जायगा; और उसे युद्धान्त पर्य्यन्त वहीं रहना होगा।

(ख) युद्धकारी जहाज़ को उदासीन बन्दर में जाने का अधिकार है, परन्तु वहां जाकर उसे उस उदासीन के (जिसके बन्दर में वह गया है) सब नियमों और उपनियमों का पालन करना पड़ैगा; और यदि वहां शत्रु का भी कोई जहाज़ वर्त्तमान हो तो उसे वहां लड़ने का अधिकार नहीं है।

युद्धकर्त्ताओं के अधिकार।

(क) लड़नेवालों को अधिकार है कि जब वे शत्रु के किसी बन्दर अथवा नगर, पत्तन आदि को घेरें तो किसी उदासीन को भी न वहां जाने दें, न वहां से आने दें। यदि कोई उदासीन मनुष्य अथवा जहाज़ घेरे का हाल जान कर भी आने जाने का साहस करैगा तो युद्धकर्त्ता उसे लूट लेगा। जापानियों ने घेरे के जानने की दो रीतियां रक्खी हैं। यदि उन्होंने किसी उदासीन शक्ति को इत्तला दे दी है कि हम अमुक घेरा किये हैं, तो वे मान लेंगे कि उस रियासत की प्रत्येक प्रजा पर वह हाल विदित है। द्वितीय प्रकार यह है कि जब वे स्वयं जानते हों कि ऐसा घेरा किया गया है।

(ख) युद्धकर्त्ता "आपत्काले मर्य्यादा नास्ति" (augury) वाले अधिकार काम में ला सकता है। यह एक ऐसा विलक्षण अधिकार है कि बिना बड़ी ही आवश्यकता के लड़नेवाले इससे लाभ नहीं उठा सकते हैं। इसके द्वारा उन्हें यह अधिकार है कि वे उदासीन शक्ति की किसी वस्तु को बलात् लेकर अपने काम में लावें अथवा उसे नष्ट कर दें। ऐसी दशा में युद्धकर्त्ता उदासीन को उसका हर्जा देता है।

(ग) युद्धकर्त्ताओं को अधिकार है कि यदि वे युद्धसामग्री पकड़ पावें तो उसे लूट लें। लूटमें लड़नेवालों को चाहिये कि उदासीन जहाज़ों और उनमें भरे हुए पदार्थों को न लूटें चाहे उनमें शत्रु की भी कोई वस्तु रक्खी हो। और उन्हें यह भी चाहिये कि यदि उदासीन शक्तियों अथवा प्रजाओं की कोई वस्तु शत्रु जहाज़ पर भी मिले तो उस जहाज़ को तो लूट लें; परन्तु उस उदासीन की वस्तु को न लूटें। ये नियम केवल युद्ध सामग्री से सरोकार नहीं रखते हैं। युद्धकर्त्ता को अधिकार है कि यदि किसी उदासीन प्रजा की भी युद्ध सामग्री रणक्षेत्र की ओर जाती हो तो उसे लूट लें। यह अधिकार उन्हें इस कारण दिया गया है कि उदासीन प्रजा को युद्धकर्त्ताओं के हाथ युद्ध सामग्री तक बेचने का अधिकार है। अतः यदि युद्धकर्त्ता को इस व्यापार के रोकने का अधिकार न होता तो उसको बड़ी हानि होती।

युद्धकर्त्ता को यह भी अधिकार है कि यह बात जानने के लिये, कि अमुक जहाज़ में कोई युद्ध-सामग्री है या नहीं, जहां चाहें उदासीन जहाज़ को रोककर उसे देखें। यदि जहाज़ ही के देखने से उनका सन्देह दूर हो जाय तो उसे वहीं छोड़ दें; यदि नहीं, तो उसके बही खाते आदि देखें; यदि उस पर भी सन्देह दूर न हो तो, उसके किसी या सब कमरों या बक्सों को खुलवा कर देखें। यदि कोई युद्ध सामग्री मिलै तो उसे ले लें; यदि न मिलै और उन्होंने जहाज़ को देर तक रोका हो तो उसको हर्जः दें।

युद्धसामग्री दो प्रकार की होती है एक तो निश्चित और द्वितीय अनिश्चित (unconditional and conditional).

(घ) "निश्चित युद्ध सामग्री" ऐसे पदार्थों को कहते हैं जो लड़ने के काम आते हैं; अथवा जिनके द्वारा लड़ाई में काम आनेवाले पदार्थ बनाये जाते हैं, अथवा दुरुस्त रक्खे जाते हैं। यथा अस्त्र, शस्त्र, गोला, बारूद, डिनेमाइट आदि उड़ानेवाले पदार्थ, गोला बारूद अथवा अन्य निश्चित युद्ध सामग्री बनाने वाले यन्त्र, युद्धमें काम आनेवाले कपड़े, जहाज़ की लकड़ी, टाट आदि। यदि किसी उदासीन प्रजा का भी जलयान इन पदार्थोंमें से किसी को युद्धस्थल की ओर लिये जाता हो तो किसी युद्धकर्त्ता को अधिकार है कि उसे ज़ब्त कर ले और उसके दाम भी न दे। यदि उस जहाज़ के पत्र आदिसे कोई धोखे की बात जान पड़े तो जहाज़ भी छीन ले और उसके भी दाम न दे।

(ङ) "अनिश्चित युद्ध-सामग्री" ऐसे पदार्थों को कहते हैं जो ख़ास लड़नेके काम नहीं आ सकते; परन्तु जिनके पा जाने से युद्धकर्त्ता को लड़ाई लड़नेमें सुबिधा हो, अथवा जिन पदार्थों की निश्चित युद्ध-सामग्री बन सकती हो, यथा ग़ल्ला, लोहा, जूता, तेल, घी, द्रव्य, तारबर्क़ों में काम आनेवाले पदार्थ, रेल बनाने के पदार्थ, कोयला, सूखी घास, घोड़े, गधे, बैल, लकड़ी, सन इत्यादि। कपड़ोंके विषय में सन्देह है कि उनकी गणना किस विभाग में की जाय; परन्तु प्रायः वे निश्चित युद्ध-सामग्री में समझे जाते हैं। किसी युद्धकर्त्ता को अधिकार है कि यदि वह इन पदार्थों में से कोई वस्तु किसी उदासीन जलयान पर देखै और वह शत्रु की हो तो उसे छीन ले; परन्तु यदि वह उदासीन की हो तो उसे हक़सफ़ा द्वारा क्रय कर ले। किसीके औरों की अपेक्षा कोई पदार्थ मोल लेने के श्रेष्ठतर अधिकार को हक़सफ़ा कहते हैं। सो हक़सफ़ा द्वारा मोल लेने से यह अभिप्राय है कि यदि उसने किसी ऐसे पदार्थ को पकड़ पाया है तो उसके स्वामी को अधिकार नहीं है कि उस पकड़ने वाले के हाथ वह पदार्थ न बेचै। हां, स्वामी के लाभार्थ युद्धकर्त्ता को उस पदार्थ के वास्तविक मूल्य से प्रति एक सौ रुपये, १०) अधिक देना पड़ैगा। परन्तु यदि उस पदार्थ के विषय कोई जाल अथवा धोखे की बात निकलै, अथवा यह विदित हो कि उसका स्वामी उसे छिपाकर निकाले लिये जाता था, तो स्वामी का दाम पाने का अधिकार जाता रहैगा; अर्थात

युद्धकर्त्ता उस पदार्थ के लूट लेगा। यदि किसी की युद्ध-सामग्री लूटी जाय तो उस स्वामी का यदि कोई अन्य पदार्थ भी उसी स्थान पर होगा तो वह भी लूट लिया जायगा, चाहै वह किसी प्रकार की युद्ध सामग्री की गणना में न आता हो। यदि कोई उदासीन जहाज़ किसी युद्धकर्त्ता को सहायता देने के विचार से उसके नौकरों को अपने जलयान पर ले जायगा तो भी उसका जहाज़ लूट लिया जायगा; परन्तु केवल राजदूत के ले जाने से ऐसा नहीं किया जायगा।

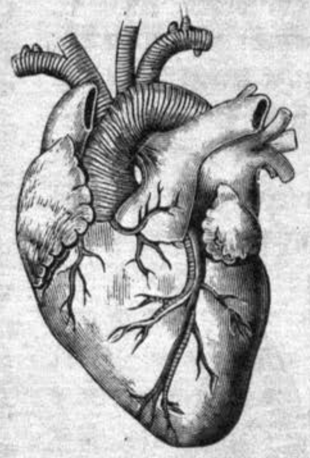
(च) यदि युद्ध-सामग्री युद्धकर्त्ता के बन्दर की ओर न जाती होगी तो नहीं लूटी जायगी; परन्तु यदि वह ऐसे बन्दर को जाती होगी जहां से वह युद्धकर्त्ता के बन्दर को पहुंचाई जाती होगी, तो वह लूट ली जायगी ।

श्यामविहारी मिश्र, यम० ए०,
और
शुकदेवविहारी मिश्र, बी० ए० ।

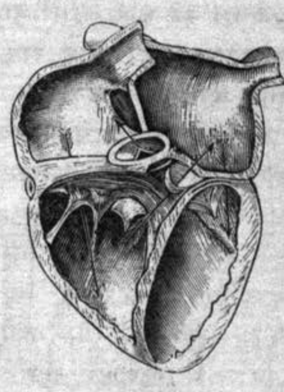
हमारी देह ।

यदि सरस्वती के किसी पाठक की इच्छा हो तो मैं उसे मनुष्यदेह के भीतरवाले यञ्जिन का कौतुक दिखा सकता हूं और उसके अद्भुत कलाकौशल का भेद खोल सकता हूं । शरीर की प्रत्येक गति में कुछ न कुछ बलक्षय होता है; तथा निर्वाह के लिये मनुष्य के अङ्ग-प्रत्यङ्ग कितना पौरुष करते हैं, इसपर ध्यान देने से शरीर भी एक ख़ासा पुतलीघर जँचने लगता है। आप शरीर के किसी भाग पर ध्यान दीजिये और देखिये कि वह किस प्रकार अपना कार्य पूरा करता है। उसी अनुमान से आप अपने पूरे शरीर के कर्तव्य का अन्दाज़ा लगा सकते हैं। और जब हम यह देखते हैं, कि अङ्ग-प्रत्यङ्ग कैसा लगातार अपने काम में स्थिर हैं–न आराम, न विश्राम,–तब आप सोच सकते हैं कि वह भीतरवाला यञ्जिन कैसा ठीक और कैसा दृढ़ है । आश्चर्य्य इस बात का है कि वह यञ्जिन कैसा चुपचाप अपने काम में व्यस्त है कि हमलोगों को साधारणतः उसका कुछ पता ही नहीं चलता ।

पाठक महाशय ! आप अपनेको किसी अँधेरी कोठरी में बैठा समझ लीजिये । मैंने वहां आकर दीपक जला दिया है और आपका ध्यान एक पम्प की ओर आकर्षित किया है । वह क्या है ? वह इस देह का हृदय है ।



हृदय का बाहरी भाग



हृदय का भीतरी भाग

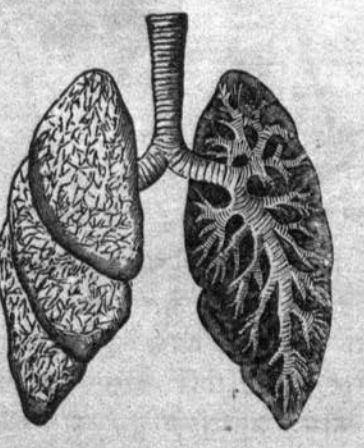
यह पान के आकार का दृढ़ मांसपेशियों से निर्मित है, जो अपने जीवन भर सर्वदा फैलता सिकुड़ता रहता है । उसके लिये न कभी छुट्टी है न तिवहार । आठ पहर चौसठ घड़ी उसे अपने काम से काम । जहाज़ी यञ्जिन की तरह रात को भी उसे विश्राम नहीं। इस यञ्जिन को बाल से भी पतली नसों में रुधिर पहुंचाना होता है और फिर इतना ज़ोर लगाना पड़ता है, कि रुधिर शरीर की नसों में चक्कर कर के, फिर वहां का वहीं आजाता है।

हृदय की एक ओर वाली एक कोठरी में अनुमान तीन छटांक रुधिर की जगह है; और नाड़ी की गति साधारणतः मिनट में ७५ बार है; अर्थात् एक मिनट में २२५ छटांक रुधिर इस कोठरी से आता जाता है। एक घण्टे का काम जानने के लिये यदि

हम इसे ६० से गुणा करें ते। २१ मन से ऊपर हुआ! और जो रात दिन अर्थात् २४ घण्टे का हिसाब लगाया जाय ते। ५०० मन पर बात पहुंचती है !!! क्या आप को इस बात का अनुमान भी है कि आप के भीतर ऐसा बलशाली यञ्जिन है ?

यह ते। हृदय के एक ओर की बात हुई। दूसरी ओर भी यही दशा है; क्योंकि हृदय के दो भाग हैं—एक से शुद्ध और दूसरे से मैला लहू आता जाता है। जो दोनों अङ्कों को मिलालें ते। १००० मन हुए !!! रात दिन में इतना रक्त काढ़ना निकालना जिस यन्त्र का काम है वह बड़ाही आश्चर्य्यमय है। तिस पर वह इतना शान्तिपूर्वक चलता है कि हम चेष्टा करके ही जान सकते हैं कि हमारा हृदय अपने कार्य में आरूढ़ है।

पाठक महाशय ! अब ज़रा ऊपर चलिये। आपको एक जोड़ा धौंकनी दिखानी है। आपने

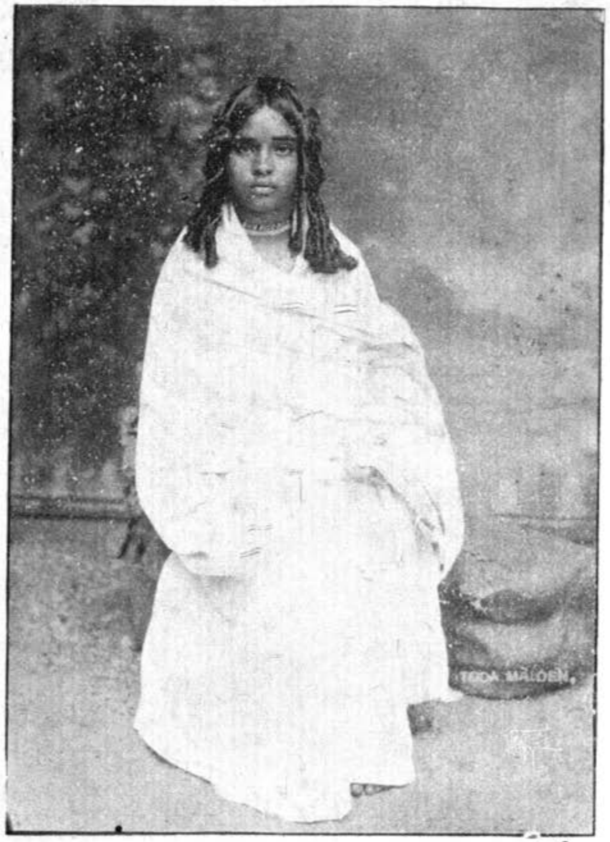


ऐसी अद्भुत धौंकनी शायद ही देखी हो। यह श्वास लेने का यन्त्र है। इन्हींके फूलने सिकुड़ने से हमारा रुधिर शुद्ध होता है। मनुष्य एक मिनट में १७ बार श्वास लेता है। अर्थात् प्रति ६० सेकण्ड में १७ बार शुद्ध वायु भीतर ले जाता है और इतनी ही दूषित वायु वह बाहर निकालता है। अर्थात् घण्टे में मनुष्य १०५० बार सांस लेता है। यह कार्य रात दिन २४ घण्टे चलता रहता है। सबको मिलाने से २४४८० हुए ! इतनी बार प्रति दिन यह धौंकनी फूलती और सिकुड़ती है ? एक बार में ३० घन इञ्च वायु भीतर जाती है और फेंफड़ों (उक्त कथित धौंकनी) में पहुंच कर अपना प्राणप्रद अंश (आक्सिजन) रुधिर में मिला देती है। उसके स्थान में दूषित वायु (कार्बोनिक एसिड गैस) लेकर वह बाहर आती है। फेफड़े ऐसे लचीले तन्तुओं से बनाये गये हैं कि हर बार, श्वास प्रश्वास के साथ, स्वतः फैलते सिकुड़ते रहते हैं।

अब आप कोठरी से बाहर आइये; और उसकी दीवारों पर ध्यान दीजिये, कि भीतर का मल निकालने के लिये कैसी हिकमत रक्खी गई है। खुली आंखों से ते। देह का चर्म साफ़ दिखाई देता है; परन्तु यथार्थ में यह एक प्रकार के छिद्रों से चलनी बना हुआ है। उनकी संख्या ७० लाख कूती गई है ! ये छिद्र पसीने की नालियों के मुँह हैं। इन्हींके द्वारा भीतर की कलों से निकाला हुआ सब मल बाहर आता है। यदि किसी प्रकार ये छिद्र बन्द कर दिये जाँय ते। उसी समय मृत्यु आ उपस्थित होती है। ये नालियां ¼ इञ्च लम्बी हैं और एक इञ्च वर्ग में इनकी संख्या २,८०० है। यदि मनुष्य के चर्म का क्षेत्रफल २५०० इञ्च वर्ग मान लिया जाय ते। इनकी संख्या ७० लाख पर पहुंचती है ! यदि इन नलियों को एक लम्बाई में जोड़ने का हिसाब देखा जाय ते। प्रति मनुष्य में २८ मील लम्बी नाली निकलेगी !!! प्रत्येक छिद्र से हर मिनट में ११ ग्रेन मैला जल (पसीना) बाहर होता है जिसमें २ फ़ी सैकड़ा दृढ़ पदार्थ मिले रहते हैं। इस तरह शरीर से प्रतिदिन ३,००,४०० ग्रेन मल बाहर होता है !

अब ध्यान दीजिये कि ७० लाख नलियां कितना काम करती हैं; और फिर कितनी चुप चाप, कि सरस्वती के किसी किसी पाठक को इस लेख के पढ़ने से पहले शायद उनका पता भी न हो।

महेन्दुलाल गर्ग।



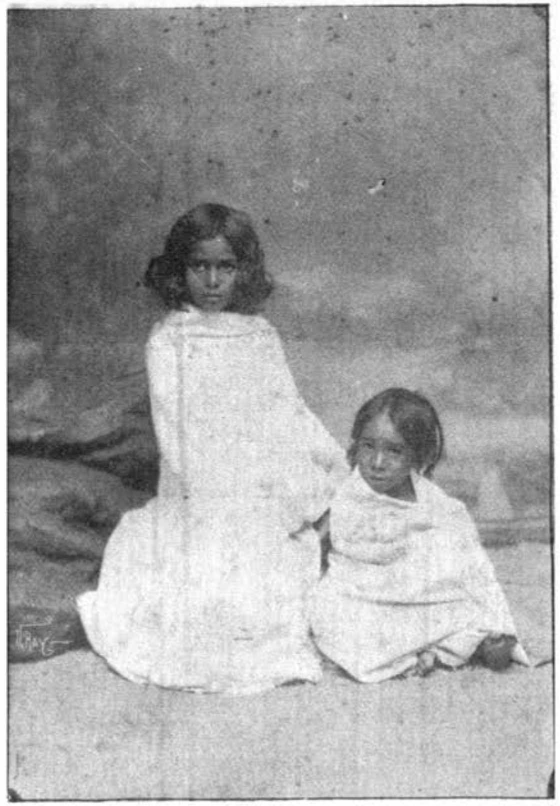
टोडा कन्या (कुमारी)



टोडा माता और बालक



टोडाओं की एक लड़की



टोडाओं के दो लड़के

नीलगिरि पर्वत के निवासी टोड़ा लोग*।

भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रदेशों के पहाड़ों पर असभ्य जङ्गली लोग रहते हैं। परन्तु नीलगिरि के टोड़ा लोग जैसे अंग्रेज़ों के कृपापात्र हुए हैं, वैसा सौभाग्य आजतक किसी भी असभ्य जाति को प्राप्त नहीं हुआ है। टोड़ा जाति के लोग बड़े साहसी और पराक्रमी होते हैं। इसलिये वे लोग अंग्रेज़ों को देख कर डरते नहीं।

ये लोग देखने में और असभ्य जातियों से अधिक रूपवान होते हैं। वे खेती बारी तथा किसी तरह का व्यापार नहीं करते, केवल भैंसही पाल कर अपना उदर पोषण करते हैं। ये लोग अपने को नीलगिरि प्रदेश का मालिक समझते तथा बताते हैं। वहां दूसरे जङ्गली जाति के लोग भी इन्हें अपना राजा अथवा ज़मीन्दार मानते हैं और उन्हें कर प्रदान करते हैं। इससे यह मालूम होता है कि ये लोग नीलगिरि के आदि निवासी नहीं हैं। पहाड़ पर बहुतसी ऐसी क़बरें हैं कि जिसके विषय में यह लोग कुछ भी जानकारी नहीं रखते। उन क़बरों को खोदने से वे कुछ भी आपत्ति नहीं करते। यदि वे क़बरें उनके पूर्वजों की होतीं तो वे कुछ न कुछ आपत्ति अवश्य करते। असभ्य जातियों के मुख्य हथियार धनुषबाण को वे काम में नहीं लाते। भैंस हांकने के लिए केवल एक लाठी और एक कुल्हाड़ी ही इन लोगों के पास हमेशा रहा करती है।

टोड़ा लोगों का पहनाव एक छोटीसी लंगोटी मात्र है। पर वे एक कम्बल से सारा शरीर ढके रहते हैं। एक हाथ कम्बल के भीतर रहता है, दूसरा बाहर, जैसा इस संख्या में प्रकाशित एक चित्र में दिखलाया गया है। पुरुष केश, तथा डाढ़ी मोंछ रखते हैं। स्त्रियां बालों को खुला रखतीं हैं।

भारतवर्ष के प्रायः सभी पर्व्वतवासी "मङ्गोल" या "निग्रिटो" जाति के होते हैं। किन्तु टोड़ाओं को देखने से मालूम होता है कि वे "मंगोल" या निग्रिटो" जाति से कहीं ऊँचे दरजे के हैं। पहले पहल पाश्चात्य विद्वानों का यह अनुमान था कि शायद ये लोग रोमन, ग्रीक, अथवा शक जाति के हों। क्या आश्चर्य्य है जो शक और ग्रीक, जिन्होंने जो समय समय पर भारतवर्ष पर आक्रमण किया था, उन्हीं लोगों के कुछ साथी यहां रह गये हों और वही लोग नीलगिरि के "टोड़ा" नाम से पुकारे जाने लगे हों। परन्तु मदरास के डा० शाट ने अनेक प्रमाणों के द्वारा यह सिद्ध करके दिखलाया है कि टोड़ा लोग द्राविड़ जातियों में से हैं। उनका मत है कि द्राविड़ लोग हिन्दू होने के पहले जिस प्रकार थे, ठीक उसी भांति टोड़ा लोगों की आधुनिक सामाजिक रीति, नीति, व्यवहार, सभ्यता आदि से इनका द्राविड़ होना सिद्ध होता है। इन लोगों की भाषा कनाड़ी और तामील से मिलती जुलती है। पर इनका उच्चारण ऐसा भ्रष्ट होता है कि, जिनकी मातृभाषा कनाड़ी या तामील है, वे लोग भी इसे सहज में नहीं समझ सकते। थोड़ीसी चेष्टा करने पर यह ज्ञात होती है कि इनकी भाषा कनाड़ी अथवा तामील भाषा की शाखा है।

टोड़ा लोग कहा करते हैं कि पहले वे पहाड़ के नीचे समथल भूमि पर रहते थे और रावण के उपद्रव से भयभीत होकर पहाड़ों के ऊपर जा के रहने लगे हैं। पर ऐसा अनुमान होता है कि रावण के अत्याचार से नहीं, वरन् मैसूर के हिन्दू राजाओं के अत्याचार से ही इन लोगों ने पर्व्वत का आश्रय लेना स्वीकार किया है।

टोड़ा लोग भैंस को बहुतही पवित्र समझते हैं। परन्तु हिन्दू जैसे गाय को पवित्र मानते हैं, और गोहत्या करना महा पातक समझते हैं, उस भांति भैंस की हत्या करना टोड़ा पाप नहीं समझते।

* बंगला मासिक पत्र "प्रवासी" के एक लेख का आंशिक अनुवाद।

टोड़ा लोग मुर्दों को जलाते हैं। बड़ों के मरने पर अपना मूड़ मुड़वा कर वे उनको सम्मान देते हैं। पर यह रीति सब टोड़ाओं में नहीं है। मरने के साल भर पीछे मृत मनुष्य की झोपड़ी को वे जला देते और उसकी दो भैंसों की बलि देते हैं। पहले मृतक मनुष्य की सब भैंसों को वे मार डालते थे; पर अब अंगरेज़ी सरकार ने इस अन्याय-प्रथा को रोक दिया है।

टोड़ा लोग बड़े ही आलसी होते हैं। वे काम काज करना नहीं चाहते। इन लोगों में आधुनिक सभ्यता धीरे धीरे घुस रही है, जिससे इन लोगों की प्रकृति का शीघ्रही परिवर्तन होना सम्भव है। किन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि इन लोगों की कुछ उन्नति हो रही है इन लोगों का ऐसा विश्वास है कि मृतक मनुष्यके श्राद्धोपलक्ष में भैसों का वध करने से, भैंस अपने पूर्व स्वामी के निकट जा पहुँचती है। इस प्रकार की हत्या करने के सिवा और बातों में भैंसों के प्रति लोग ख़ूब मान और प्रतिष्ठा दिखलाते हैं। भैंसों की सेवा करना, दूध दुहना इत्यादि काम पुरोहित महाशय का है। मैसूर राज्य में यह कहा जाता है कि मैसूर पहले महिषासुर का राज्य था। मैसूर राज-वंश के पूर्वजों की पूजा से प्रसन्न होकर दशभुजा देवीने महिषासुर को मार, उसका राज्य मैसूरके राजा को प्रदान किया। अब तक मैसूर की अधिष्ठात्री देवी "महिषासुर-मर्द्दिनी" और राज्य का आधुनिक नाम "महीसुर" वा मैसूर प्रसिद्ध हो रहा है।

टोड़ाओं के कहने से मैसूर राज्य का इतिहास बहुत कुछ मिलता है। सम्भव है कि टोड़ाओं ने अपने सतानेवाले (मैसूर-राज) का नाम भूल कर-"रावण" प्रसिद्ध कर दिया हो। दोनों कहावतों को मिलाने से यह निश्चित होता है कि टोड़ा लोग ही "महीसुर" के महिषासुर रहे होंगे।

टोड़ा स्त्रियों में बहुविवाह की रीति है। बड़े भाई की स्त्री से छोटे भाइयों का स्त्री-वत् व्यवहार करने का अधिकार है। यदि पति के दो भाई हों, और पत्नी की दो बहनें भी हों, तो तीनों बहनें, तीनों भाइयों की स्त्रियां होतीं हैं, और हर एक भाई हर एक स्त्री पर एक सा सत्व रखता है।



टोड़ा सरदार।

लड़के का पितृत्व निर्णय करने की रीति भी बड़ी अद्भुत है। बड़ा लड़का बड़े भाई का, और छोटा लड़का छोटे भाई का समझा जाता है। टोड़ा लोग अपने लड़के को ख़ब प्यार करते हैं और बड़े यत्न के साथ उसका पालन पोषण भी करते हैं। वे बालकों को देवता के समान पवित्र समझते हैं। जिस स्थान में वे भैंस दुहते हैं, वहां

बालक और पुजारी को छोड़ कर दूसरा मनुष्य हर समय नहीं जा सकता। जहां पर भैंसें दुही जातीं हैं उसे मन्दिर वा देवालय कहते हैं। टोड़ा लोग अपनी झोपड़ी में केवल एक छोटा सा दरवाज़ा मात्र रखते हैं। उसमें सारे परिवार को लेकर वे रहते हैं। और उसीमें वे रसोई भी बनाते हैं। इन्हीं कारणों से उनके झोपड़े बड़ेही मैले और गन्दे होते हैं। ये लोग प्रायः नहाते नहीं, और सारे शरीर में घी मलते हैं। इसीसे उनके शरीर से बड़ी दुर्गन्ध निकलती है।

टोड़ाओं का मुख्य देवता घण्टा है। वे उसे हिरिया कहते हैं। यह घण्टा प्रधान भैंसे के गले में बँधा रहता है।

इनके पुरोहित दो प्रकार के होते हैं, एक का नाम "पलाल" दूसरे का "देवलाल" है। "पलाल" का ख़ूब मान होता है। सभी टोड़ा "पलाल" हो सकते हैं। "पलाल" बनने के लिए कई कठोरनियमों का पालन करना पड़ता है। "पलालों" की सेवा करना ही "देवलालों" का काम है। पूजा के समय भैंस का दूध चढ़ाया जाता है। नीलगिरि में शीतला का बड़ा कोप रहता है और तरह तरह की आंख की बीमारियां भी हुआ करतीं हैं।

टोड़ा लोग भैंस चराने के लिए दूर दूर तक निकल जाते हैं। इस कारण से इनकी संख्या का निर्णय करना कठिन नहीं, किन्तु एक प्रकार असम्भव भी है। ये लोग दो चार दिन से अधिक कहीं ठहरते भी नहीं।

टोडा लोग नाचते गाते भी हैं; परस्पर उपहास भी वे ख़ूब करते हैं; पर कुटिलतापूर्ण नहीं। कुटिल नीति से कोई काम लेना ये लोग जानते ही नहीं, जिससे मिलना स्वच्छ हृदय से मिलना, यह नहीं कि "मुँह में राम राम, पेट में कसाई का काम"।

एक बङ्गनारी।

विनोद और आख्यायिका।

जिस प्रकार इस देश में ज्योतिष-शास्त्र का प्राबल्य है और प्रायः सभी काम अच्छे मुहूर्त में किये जाते हैं उसी प्रकार और भी किसी किसी देश में उसका बड़ा आदर है। उदाहरण के लिए फ़ारस को देखिए। वहां के नजूमी शाही दरबार तक में प्रतिष्ठा पाते हैं। फ़ारस में शाह अब्बास नामक एक बहुतही प्रसिद्ध नरेश हो गया है। "शा-बाश" उसीके नाम का अपभ्रंश है; और किसी अच्छे काम करनेवाले के लिए प्रयोग किया जाता है। यह एक प्रशंसात्मक शब्द हो गया है। शाह अब्बास, उसके ज्योतिषी और उसके माली के विषय में एक आख्यायिका प्रचलित है। सुनिये—

शाह को अपने महलों के पास एक छोटा सा विहार-बाग़ लगाना था। उसके लिए उसने अपने मुख्य बाग़बान को आज्ञा दी। बाग़बान ने बाग़ की ज़मीन को ठीक करके एक दिन वृक्षारोपण करना चाहा, तब तक शाह अब्बास को किसीने सुझाया कि यदि बाग़ लगाने का मुहूर्त निश्चय कर लिया जाता तो अच्छा होता। शाह के भी मन में यह बात जम गई। अतएव शाही नजूमी बुलाये गये। उन्होंने अपना पोथी-पत्रा देखभालकर यह निश्चय किया, कि एक घण्टे बादही बाग़ लगाने के लिए अच्छा मुहूर्त है; और यदि यह मुहूर्त टल जायगा तो बहुत दिनों तक अच्छी घड़ी न आवैगी। नजूमी जी ने कहा कि इस मुहूर्त में लगाई गई वाटिका शीघ्रही तैयार हो जायगी और उसको कभी कोई हानि न पहुँचैगी। इसी मुहूर्त में शाह ने पेड़ लगाने चाहे। परन्तु, इस समय, बाग़बान उपस्थित न था। ख़ैर, एक दूसरे आदमी की सहायता से, बतलाये गये मुहूर्त में, शाह ने अपने हाथ से पेड़ लगाये। यथा-मुहूर्त दिन के १ बजे, वृक्षारोपण-विधि निपट गई।